"सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते"

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग–५

सम्पादकः

हनुवंतसिंह देवड़ा

प्रकाशक

साहित्य–संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम संस्करण

वि०सं०२०१४

मूल्य २॥।)

प्रकाशक

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

मुद्रक:—

व्यवस्थापक

विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले १६ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, एवं कला विषयक सामग्री की शोध-खोज, संग्रह, सपादन और प्रकाशन का काम करता आरहा है। विशेष कर साहित्य संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास-पुरातत्व और कलात्मक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरंतर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग २० महत्व-पूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य-संस्थान के अंतर्गत इस समय (१) प्राचीन-साहित्य विभाग २) लोक-साहित्य विभाग (३) इतिहास-पुरातत्व विभाग (४) अध्ययन गृह और संग्रहालय विभाग (५) राजस्थानी-प्राचीन-साहित्य विभाग (६) पृथ्वीराज-रासो संपादन विभाग (७) भील-साहित्य संग्रह विभाग (८) नव साहित्य-सृजन कार्य एवं (९) सामान्य विभाग विकसित हो रहे हैं। सामान्य विभाग के अन्तर्गत बून्दी के प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री सूर्यमल की स्मृति में 'महाकवि सूर्यमल आसन' और प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकरजी की यादगार में 'ओझा-आसन' स्थापित किया है। संस्थान की मुख-पत्रिका के रूप में त्रैमासिक 'शोध-पत्रिका' का प्रकाशन किया जाता है एवं नवीन उदीयमान लेखकों को लिखने के लिये प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उनकी रचनाओं का प्रकाशन कार्य चालू किया गया है। इस प्रकार साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी-साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में विभिन्न विघ्न-बाधाओं के बावजूद भी निरतर प्रगति और कार्य कर रहा है। राजस्थान की गौरव गरिमा की महिमामय झांकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है—आवश्यकता है; उसके सुनहले पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के संग्रह से तय्यार की गई है। साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों से ढूंढ ढांड कर १६,००० के लगभग छन्दों का संग्रह किया है। इस संग्रह में दोहे, सोरठे, कवित्त और गीत आदि कई प्रकार के छन्द सुरक्षित हैं। इन छन्दों में विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के

गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों कस्बों एवं गांवों में बिखरे हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम कर रही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जा सकते थे लेकिन साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक-साहित्य के प्रकाशन-कार्य के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान को कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपये की सहायता प्रदान की है; उसी से उक्त पुस्तक का प्रकाशन-कार्य सम्पन्न हो सका है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान सरकार के मुख्यमंत्री (जो शिक्षा-मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहनलाल सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा योग रहा है। इसके लिए मैं, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। साथ ही भारत-सरकार के उप-शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा श्री सोहनसिंह एम.ए. (लंधन) का भी अत्यन्त आभारी हूं; जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवाई। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है। और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत-सरकार के राज्य शिक्षा-मन्त्री डॉ० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति क्या कृतज्ञता प्रकट की जाय; यह तो उन्हीं का अपना काम है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के काम में निरन्तर विकास और विस्तार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं, उनका आभार मानता हूँ। अन्य उन सभी का आभारी हूं; जिन्होंने इस काम में सहायता दी है।

विनीत—

गिरधारीलाल शर्मा

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

वसन्त पंचमी

२०१४, सन् १९५८

संस्था की ओर से

●●

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से १६ वर्ष पूर्व-प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह-संपादन और प्रकाशन-कार्य के लिये "प्राचीन-साहित्य-खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में, कार्य और प्रवृत्तियों के विकास और विस्तार के साथ परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय इसे साहित्य-संस्थान के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवं कला-विषयक सामग्री का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन किया जाता है। नवीन साहित्य के सृजन एवं विकास के लिये क्षेत्र और वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रतिभाशाली और उदीयमान लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था करने के लिये साधन सुविधाएं एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान में विगत डेढ़ युग से भारतीय साहित्य, उसकी संस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये कार्य किया जाता रहा है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है।

उन्नीस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप ही आज प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन का कार्य साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के द्वारा किया जा रहा है। विगत वर्षों के कार्य-काल में साहित्य संस्थान के द्वारा हजारों की संख्या में प्राचीन राजस्थानी गीत (डिंगल) लोक गीत, लोक वार्ताएँ, लोक कहावतें, ख्यातें और मुहावरे आदि एकत्रित किये जा चुके हैं। लोक कहावतों और लोक गीतों की अब तक काफी पुस्तकें संस्थान की ओर से प्रकाशित की जा चुकी हैं।

राजस्थान में प्राचीन राजस्थानी और हिन्दी-साहित्य का अटूट भण्डार है। इसका अन्वेषण और सम्पादन किया जाय तो राजस्थानी जीवन के सामा-

जिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आदि विभिन्न अंगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। साहित्य के इतिहास में राजस्थानी प्रतिभाओं का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है; इसका समुचित और सही परिचय आज तक विद्वानों और लेखकों को नहीं प्राप्त हो सका है। राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर का निरन्तर यह प्रयास रहा है कि राजस्थान की ऐसी अन्धकाराच्छन्न प्रतिभाओं को प्रकाश में लाया जाय और उनके साहित्य की रस-धारा से जन जीवन को परिचित करवाया जाय।

उपर्युक्त काय कितना मुश्किल और व्यय साध्य है; यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। साहित्य-संस्थान की ओर से अत्यल्प साधनों के होते हुए भी, जितना कार्य किया गया, वह विद्वानों के देखने और सोचने की बात है।

इस वर्ष राजस्थान सरकार की सिफारिश से भारत-सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय के द्वारा ५७,००) की प्रकाशन सहायता स्वीकार की गई है, इसके लिये मैं राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय, उसके विभाग एवं भारत सरकार के शिक्षा-विकास-अधिकारियों और सलाहकारों का अत्यन्त आभारी हूं। विशेष कर डॉ० कालूलालजी श्रीमाली राज्य शिक्षामन्त्री भारत-सरकार, डॉ० पी. डी. शुक्ला, सलाहकार शिक्षा-विकास-सचिवालय एवं डॉ० सोहनसिंहजी आदि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिन्होंने साहित्य-संस्थान के विकास के लिये कृपा कर सहायता स्वीकृत कराई है।

आशा है; भविष्य में भी सभी का सहयोग निरन्तर मिलता रहेगा।

विनीतः—

जनार्दनराय नागर
प्रोप कुलपति
राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर

दीप–मालिका
वि. सं. २०१४



विषय-सूची



सम्पादकीय:—

मेरी इच्छा थी कि प्रस्तुत संग्रह केवल राजस्थानी भाषा के मरसियों का ही प्रकाशित हो। उसी के अनुसार मैंने 'राजस्थानी भाषा' के विभिन्न मरसियों का संग्रह किया है। इस संग्रह में कुछ ऐसे मरसिये भी हैं; जिन पर ब्रजभाषा का अधिक प्रभाव दिखाई देगा किन्तु ऐसे मुश्किल से सारी पुस्तक में पांच-सात ही मिलेंगे। इस संग्रह का प्रकाशन 'प्राचीन राजस्थानी गीत' साहित्य की सीरीज में किया गया है, इसीलिये इसका नाम 'प्राचीन राजस्थानी गीत (मर्सिया-साहित्य) रखा गया है।

अन्य भाषाओं में मरसिया काव्य कितना और किस कोटि का है यह उन भाषाओं के विद्वानों की खोज और गवेषणा का विषय है। राजस्थानी में इस विषय के काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं और कई कई तो बड़े मार्मिक हैं। ऐसे काव्य पांच सौ छ:सौ वर्ष पूर्व तक के तो मिलते ही हैं, कुछ इस से भी अधिक प्राचीन काल के होंगे।

ये काव्य मुख्यतया दानी के प्रति, वीर के प्रति, आश्रयदाता के प्रति और मित्र एवं प्रेमी के प्रति रचे गये हैं किन्तु राजस्थान सदियों तक वीरों का क्रीड़ाङ्गण बना रहा, अतः एक लंबे अरसे तक उनके शौर्य पूर्ण कार्य ही प्रायः कवियों की रचना के

विषय बने रहे स्वाभाविक ही था। वीर पूजा के अग्रणी इन कवियों की वाक् श्रद्धांजलि उसी परिमाण से उन—

"कवच सेज उपधान कर
पुहुवि प्रथुल पल्यंक।"

मानने वालों वीरगति प्राप्त नर पुंगवों के यशः शरीरों को चिरंजीवी बनाने के लिये अर्पित होती रही।

जैसे वीरों का, उसी प्रकार वीरांगनाओं एवं सतियों के अलौकिक देहोत्सर्ग का भी राजस्थानी कवियों ने खुले दिल से यशोगान किया है। इस गुण ग्राहकता में वे जाति पांति के संकुचित दायरे में आबद्ध नहीं रहे। क्षत्रिय वीर-वीरांगनाओं की प्रशस्ति तो उन्होंने की ही है, अन्य जातियों के व्यक्तियों के गुणों ने भी यदि उनके हृदय को स्पर्श किया तो वे अपना आदर मुक्त कण्ठ से काव्य द्वारा प्रकट करने में कभी नहीं हिचके, काव्य का आलंबन बनने की पात्रता प्राप्त कर सको तो कवि हृदय तुरन्त ही मुखरित हो उठाः—

"त्राख प्रभु वंचणी संचणी पतिवरत,
लाय अति अंचणी झेल लीधी।
नंचणी जात परपंचणी हुई नहँ,
कंचणी वात अखियात कीधी॥"

यही क्यों, उन के हृदय की यह विशालता एवं भावुकता पशुओं तक को नहीं भूली और प्रसंग आने पर बोल उठीः—

"हय मरिग नहिंन चेटक अहह!
मरिग रान पत्ता सु मन!!"

प्रस्तुत संग्रह के पाठक देखेंगे कि इस में कुछ काव्य ऐसे हैं जो इतिहास की ऐसी अप्रकाशित घटनाओं और व्यक्तियों की ओर संकेत

करते हैं, जिनसे इतिहास के प्रेमी विद्वानों को नवीन खोज की प्रेरणा मिल सकती है। वे यह भी देखेंगे कि राजस्थानी कवियों ने विदेशी सत्ता के उन्मूलन के लिये प्रयत्नशील दिवंगत देशभक्तों की कीर्तिगाथा को चिरंजीव बनाने के लिये प्राप्त प्रसंगों का हृदय से स्वागत किया और उसके लिये उन्होंने अपनी वाणी का उपयोग कर कृतार्थता अनुभव की

इन कवियों में अन्य जातियों के लोग भी रहे हैं, परन्तु यह निर्विवाद है कि प्रधानता चारण कवियों ही की है। इसी लिये तो मेवाड़ के एक भूतपूर्व सामन्त बीजोलिया के रावत किशनसिंहजी ने कहा थाः—

अमर मर्‌यां ने ये करै,
दे सुन्दर जस देह।
करौ घणौ कह किसनसी,
नरां ? चारणां नेह॥

अन्त में मैं, उन सभी ज्ञात एवं अज्ञात कवियों के प्रति अपनी कृतज्ञता करता हूँ जिनके काव्यों का इस पुस्तक में संकलन हुआ है। मेरे इस प्रयास में यदि कोई अच्छाई है तो वह श्रद्धेय ईश्वरदानजी आशिया (मेंगटिया-मेवाड़) और रूपसिंहजी बारहठ (वरवाड़ा-मेवाड़) की शुभ सम्मति एवं सहायता का ही प्रतिफल है। मैं, राजस्थान विश्व विद्यापीठ साहित्य संस्थान के अध्यक्ष भाई गिरिधारीजी का आभारी हूँ कि राजस्थान भारती की सेवा करने का मुझे यह मांगलिक अवसर दिया।

हनुवन्तसिंह देवड़ा

आकाशवाणी, जयपुर
३ मार्च ५७

अर्जुन गौड़

गीत

पड़ियौ नहँ ध्रग न मखियौ पंखियां।
ऊपाड़ न जालियौ आग॥
अरजुण गौड़ तणौ मार्ग अँग।
लड़तां गयौ लोहड़ां लाग॥ १॥

खित पड़ियौ न पळचरां खाधौ।
पावक नहँ भखियौ पर जाळ॥
वीठलदास तणौ तन विढतां।
त्रिजड़ां वैठ गयौ विण ताळ॥ २॥

गिरियोड़ौ तन विहँग न ग्रसियौ।
दावानळ दंझर न दह्यौ॥
पाव हणै अनुगां पाहंतौ।
रज रज धारां विलग रह्यौ॥ ३॥

इळ पळचर आनळ सिव अपछर।
जोवै किण वासु तै जग॥
सो हँस जाय अमरपुर वसियौ।
खावौ घट न्हें कहै खग॥ ४॥

भावार्थः—न तो वह पृथ्वी पर गिरा, न पक्षियों ने ही उसे खाया और न उसे उठा कर आग में ही जलाया; अर्जुन गौड़ का शरीर तो लड़ते लड़ते शस्त्रों के ही लग गया! न तो वह धराशायी हुआ, न पलचरों का भक्षण बना और न पावक ही उसे दहन कर सका, वह विठ्ठलदास का पुत्र युद्ध भूमि में तलवारों के ही चिपक गया! न तो वह शरीर गिरा, न विहगों का ग्रास हुआ और न अनल ने ही उसे दग्ध किया, वह पाल का पोता तो शत्रुओं का संहार करता हुआ तिल तिल हो कर तलवारों के ही लग गया।

तलवार कहती है:-पृथ्वी, पलचर, पावक, पशुपति और पक्षियों! तुम संसार में व्यर्थ ही क्यों उसके लिये इधर उधर देख रहे हो, वह आत्मा तो अमरपुर में जा बसी है और शरीर को मैं व्याहा कर गई हूँ।

[रचयिताः- अज्ञात]

ठाकुर अर्जुनसिंह (बसी-मेवाड़)

सोरठा

बहु विध देवण बोध, धरम नावखेवण धरा।
(म्हारा)सत गुरु तूं सीसोद, आजे इक बर अजनसी ॥ १ ॥

भावार्थः—अनेक प्रकार से बोध-उपदेश देने एवं पृथ्वी पर धर्म की नाव खेने के लिये, हे मेरे सद्गुरु सिशोदिया अर्जुनसिंह! एक बार तो पीछा आ।

कासी बसी कहाय, नारद रहवासी सुणी।
भुजां अजन रै भाय, राजी तिण वारै विसद ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस में शारदा निवास करती हुई सुनी गई वह बसी (ग्राम) अर्जुनसिंह के जमाने में ही काशी कहलाई थी।

[रचयिताः- कविराव बख्तावरसिंह]

सतियाँ

[कुंवर अमरसिंह से सम्बन्धित]

दोहा

द्रढ़ पतिव्रतियां धार दिल, मतियां मेर समान।
बैठ तियां झालां विचैं, सतियाँ किया सनान ॥ १ ॥

जेज पलक न करी जिका, दहती झालां देह।
ज्यांरो सांचो जगत में, निज खांवंद सूं नेह ॥ २ ॥

मिली खलक आखै स मुख, सती चली पति संग।
खम तो खामद खूंदिया, आग खमि इण अंग ॥ ३ ॥

गीत

मुख रतियां भलल चढी अस मलके।
उच रतियां हरिनाम उलास ॥
त्रिप हो में कारण पति व्रतियां।
सतियां अमर तणी सा वास ॥ १ ॥

सुध कुल वहुँवे हेक खवासण।
आडी चहूँ वालियो अंक ॥
पोहप सुढालां पलँग पौढती।
पौढी झालां तणै प्रजंक ॥ २ ॥

सुण व्रत अमर आभ सिर लागा।
जूझाऊ वागा जिण वार ॥
होमी देह सहत हद लंकी।
वीरपुरी, चावड़ी, पुंवार ॥ ३ ॥

जाग जाग भल रूप मनंजे।
दृढ पतिव्रत अनुराग दलां॥
आग सनान करै दन आखर।
भोगै जिके सुहाग भलां॥ ४॥

भावार्थः—हृदयों में जिन के पतिव्रत की दृढ़ता है और जिन की बुद्धि मेरु पर्वत के समान निश्चल है; उन सतियों ने ज्वालाओं में बैठ कर अग्नि स्नान किया॥ १॥ जिन्होंने अपनी देह को पति के साथ आग की लपटों से दग्ध करने में पल भर का भी विलम्ब नहीं किया– उनका पति–प्रेम इस संसार में सचमुच अनुपम है॥ २॥ एकत्रित जन–समुदाय कह रहा है–कि सतियाँ अपने प्राण–वल्लभ के साथ जा रही हैं। इनके जिन सुकुमार शरीरों ने अपने प्रियतम को सब प्रकार की इच्छाओं का जिस प्रकार अनुवर्तन किया, आज उसी दाम्पत्य–प्रेम से प्रेरित हो, अग्निदाह को भा अंगीकार कर रही है॥३॥

जिस समय अमरसिंह का मरण संवाद सुना, उनके मस्तक ऊंचे हो गये मानों आकाश से जा लगे। युद्ध के बाजे बजने लगे और वे आरक्त ओजस्वी मुखाकृति वाली हरिनाम का उच्चारण करती हुई मंद मुसकान के साथ घोड़ों पर सवार हो गई। अपने अलौकिक पतिव्रत से प्रेरित हो ये कोमलांगियाँ अपनी देहों को दग्ध करने जा रहीं हैं॥ १॥ तीन विशुद्ध कुल की और एक उप पत्नी—चारों ने पति–प्रेम की सीमा दिखा दी। अमरसिंह की इन सतियों को धन्य है, जिस प्रकार सुसज्जित पुष्प शय्या पर ये पौढ़ा (सोया) करती थीं; आज उसी सहज भाव से ये धधकती ज्वालाओं की चिता के पर्यंङ्क पर पौढ़ी हैं॥ २॥ उपपत्नी, वीरपुरी, चावड़ी और पुंवार—चारों ने अपनी देह होम दी।

वे भले ही अपने पतियों से रूठें, मनें और सुहाग भोगें जो हृदय में पातिव्रत का दृढ़ अनुराग रख कर अन्तिम समय में इस प्रकार अग्निस्नान करती हैं।

[रचयिता:- आढ़ा किशनाजी]

लाला बाई

[महाराजा अभयसिंह की उर-पत्नी]

दोहा

सची न चालै उर वसी, इन्द्र पड़ै उण वार।
ले गज चालां सी चली, लालां अभमल लार ॥ १ ॥

गीत

करे ध्यान नँदलाल सिर लाल काढे तिलक।
चाल मदमसत हित लाल चालां ॥
साथ अभमाल री जाल पवसाख सभ।
लाल झालां धसी सती लालां ॥ १ ॥

वाण प्रभु वंचणी संचणी पतव्रत।
लाय अति अंचणी झेल लीधी ॥
नंचणी जात परपंचणी हुई नहँ।
कंचणी वात अखियात कीधी ॥ २ ॥

जमी क्रम क्रम्म पर साध असमेध जग।
हिम रकम गऊ दे दुजां हाथै ॥
सेज पोहपां चढ़ी पीव साथै सदा।
सेज पावक चढ़ी पीव साथै ॥ ३ ॥

जदन नरपुर वसी कंथ लागां जले।
छंडे सुरपुर वसी इन्द्र छंडियौ॥
सती सतपुर वसी अभारी खवासए।
उरवसी सची रौ गरव उडियौ॥४॥

भावार्थः—जब इन्द्र का शरीर पात होता है तो उसकी प्रेयसी अप्सरा उर्वशी उसके साथ नहीं जाती और न प्रियतमा शची ही उसकी संगिनी होती है; किन्तु अपने पति की सच्ची प्रेमानुरक्ता लाला गजगति से अभयसिंह के साथ चल दी।

नंदलाल का हृदय में ध्यान करके लाल वेशभूषा से सज्जित हो, भाल पर लाल तिलक लगा कर मदमत्त चाल से सती लालां अभयसिंह के साथ लाल लपटों में प्रविष्ट हो गई॥१॥ उस प्रभु की वाणी का पाठ करने वाली एवं पातिव्रत का संचय करने वाली ने आग की अति दाहक ज्वालाओं को झेलली। जाति की नर्तकी होते हुए भी वह प्रपंचिनी नहीं बनी और उस कंचनी ने अपनी बात अमर करदी॥२॥ द्विजों को गायें और स्वर्णाभरण दान में देकर भूमि पर प्रत्येक पग के साथ अश्वमेध यज्ञ करती हुई सी वह सती जिस प्रकार पति के साथ सदा पुष्प शय्या पर चढ़ती थी, उसी सहज भाव से पति के साथ पावक की सेज पर चढ़ गई॥३॥ वह जब तक मृत्युलोक में रही, पति के साथ रही। पति-निधन पर उसके साथ जल कर स्वर्ग गामिनी हुई। वहां भी उसने इन्द्र और उसके स्वर्ग को छोड़ दिया और वह अभयसिंह की उप-पत्नी अपने पति को लेकर सत्य-लोक में जा बसी। उसके इस अनुराग को देख कर उर्वशी का ही क्या शची का भी गर्व खर्व होगया।

[रचयिताः- अज्ञात]

श्री इन्द्रबाई रत्नू (खुड़द मारवाड़)

दोहा

सक्ति भक्ति री प्रेरणा, तो सूं मिली अनूप ॥
निज नजरचां निरखें कठै, रूप रावलो रूप ॥ १ ॥

भावार्थः—शक्ति और भक्ति की जिससे अनुपम प्रेरणा मिला करती थी; (हे देवी, मैं) रूपसिंह अपने नेत्रों से आपके वह (प्रभावोत्पादक) दर्शन कहाँ करू ?

हरि राख्यो गजराज नूं, द्रोपदि बाध्यो चीर ॥
सेठ बूड़तो दधि रख्यो, देखो इन्द्र नजीर[1] ॥ २ ॥

भावार्थः—(पूर्व काल में) भगवान ने गजराज की रक्षा की; द्रौपदी का चीर बढ़ा कर उसकी रक्षा की। (उसी प्रकार इस कलियुग में) समुद्र में डूबते हुए सेठ को रक्षा की। देखिये (पूर्व परम्परा की) इन्द्रबाई एक उदाहरण बन गई।

झूंपड़ियां जिण ढांहती, बण्या बठै प्रासाद ॥
चमतकार वो आपरो, आवै पल पल याद ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिस जगह पहले फूस की झौंपड़ियाँ थीं, (आज) वहाँ राजप्रासाद की भाँति (लाखों के मूल्य का) देवालय (श्री करणीजी का मंदिरादि) बन गया है। उस (स्थिति परिवर्तन करने वाले) आपके चमत्कार (देवत्त्व) की क्षण क्षण में याद आती रहती है।

टिप्पणी:-१ श्री इन्द्रबाई खुण्द (खुर्द) (जो फुलेरा से जोधपुर जानेवाली लाइन के वेसरोली स्टेशन के पास २ मील पर है उस) के चारण श्री सागरदानजी रत्नू के यहाँ जन्म हुआ। जहाँ तीन चार चारणों की व एक जाट की फूस की झौंपड़ी है।

नहं सिक्षा, दीक्षा नहीं, गुरू बिना सह ज्ञान ॥
इन्द्र प्राप्त किय आप ही, तो सी कवरण महान ॥ ४ ॥

भावार्थः—न तो कहीं पठन पाठन की शिक्षा ली और न किसी से दीक्षा ग्रहण की। आपने सारा ज्ञान बिना ही गुरु के प्राप्त किया। हे इन्द्रबाई! आपके समान कौन महान् है?

अनासक्त जीवन तणी, मा परतच्छ मिसाल ॥
तूं चारण कुल में हती, सरण पड़्यां री ढाल ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे माँ! अनासक्ति से जीवन व्यतीत करने वालों के लिये तूं प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप थी और (इसी प्रकार) चारण वंश में शरणागतों के लिये तूं ढाल (रक्षिका) की तरह थी।

केतां कारज सारिया, केतां किय उद्धार ॥
लेखो इण रौ नहँ लखै, निरधारयां आधार ॥ ६ ॥

भावार्थः—कितने ही (दुःखी, जिज्ञासुओं के) कार्यों (सदुद्देश्यों) की (आपने) पूर्ति की; कितने (ही भक्तों) का आपने उद्धार किया। हे निराश्रितों की आश्रय! इसका लेखा-जोखा (इन) नेत्रों से नहीं देखा जा सकता।

इस निर्धन-निरक्षर चार कुटिया के ग्राम में जन्म लेकर भी आपने अपने पूर्व संस्कारानुसार अपनी इष्ट देवी श्रीकरनी जी की पूजा करनी प्रारंभ की।

८-१० वर्ष की आयु से ही आपने उपासना के साथ २ पुरुष वेष (धोती-कोट, साफा) में रहना स्वीकार कर लिया था।

अल्पायु में ही आपकी भक्ति की तल्लीनता सुन लोग दर्शनार्थ आने लगे उनमें कइयों को चमत्कार मालूम हुआ और प्रसिद्धि होने लगी। शनैः शनैः यह

एक सक्ति री सरण ले, रही सदा लवलीन ॥
इण हित तव चरणां तणा रहिया नृप आधीन ॥ ७ ॥

भावार्थः—एकमात्र शक्ति (श्री करणजी) की शरण लेकर आमरणान्त तक उसी (की भक्ति) में (अविचल रूप) से हमेशा तल्लीन रही। इसी कारण (बीकानेर, पटियाला, जोधपुर आदि के) बड़े-बड़े नरेश तेरे चरणाधीन (भक्त) बने रहे।

मेलौ रहतौ मंडियौ, तव दरसण रै काज ॥
खटकै हिय देख्याँ खुड्द, आप विना वा आज ॥ ८ ॥

भावार्थः—आपके दर्शनार्थ जहाँ हमेशा मेला लगा रहता था (भीड़ बनी रहती थी)। वही खुड्द आपके बिना देखने पर आज हृदय में (शल्य की भाँति) चुभती है।

शाक्तों का तीर्थ स्थान बन गया। सारे भारत से श्रद्धालु लोग आने लगे।

बीकानेर नरेश श्री गंगासिंह जी ने वहाँ २५ हजार की लागत का करनी मंदिर बनवा दिया था। इसी प्रकार अन्य भक्तों ने भी आवश्यकतानुसार मकानादि बनवाये थे।

एक बार कलकत्ता का कोई सेठ समुद्र यात्रा के समय संकट में पड़ गया। उसने अपने इष्टदेव को याद किया मगर उनसे कोई सहारा नहीं मिला। अंत में उसने आपका भी नाम सुन रक्खा था। अतः आपसे प्रार्थना की और वह संकट से मुक्त हो गया। उसके बाद वह खुद खुरद आकर चरणों में पड़ा, हजारों की कीमत के आभूषण, मोटर, सैजगाड़ी, मियाना वगैरा भेंट किये और मंदिर के चारों ओर एक लाख के करीब लागत का गढ़ बनवा दिया। जिसमें यात्रियों के रहने के लिये कमरों का और पानी के लिये कुएँ का समुचित प्रबंध है।

भक्त समाज ने आपको देवी का अवतार माना है।

दुख दाभ्या दुनियाँ तणा, आता सरणैं आप ॥
न्द्र वृष्टि कर शांति री, सह हरती संताप ॥ ९ ॥

भावार्थः—सांसारिक संतापों से कई (कई)संतप्त प्राणी आप की शरण में आते थे; तब हे इन्द्रबाई! आप शान्ति रूपी उपदेशों की वर्षा कर (उनकी सारी अतर्ज्वालाओं) व्यथाओं को हरण कर लेती थी—मिटा देती थी।

जनमी तूं जिण जात में, वा गारत व्है आज ॥
एकां रूं फिर इन्द्र माँ, आवो राखण लाज ॥१०॥

भावार्थः—जिस जाति में आपने जन्म लिया वह पतनोन्मुखी (तमोगुण में गर्क) हो रही है। उसकी लाज रखने के लिये एक बार तो हे माता इन्द्रबाई! फिर आइये।

नीरासक्त जीवन रख्यो, राख्यो मोह न नेक ॥
वो ही गुण मो बगस माँ, या विनती है एक ॥११॥

भावार्थ—आपने जीवन को हमेशा आसक्ति रहित रक्खा, रंच मात्र किसी से मोह नहीं किया। हे माता! मेरी यह प्रार्थना है कि वह गुण मुझे भी प्रदान कीजिये।

हिवड़ो अब खाली हुओ, विनसे भक्ती वेल ॥
इन्द्र वृष्टि हित आव फिर, बालक री कर वेल ॥१२॥

भावार्थः—हृदय आज रिक्त (नीरस) हो गया है; भक्ति-लता नष्ट हुई जा रही है। अतः हे इन्द्र (भक्ति-लता को सरस करने के लिये) वर्षा करने फिर आ जा और अपने बालक की सहायता कर।

[रचयिता— रूपसिंह बारहठ, बरवाड़ा]

ठा० उदयसिंह भाटी, खेड़ा

दोहा

खरच खत्रवट खाटमा, खरतर जाण पिछाण
ऊदल में हा एकठा, डाण माण अरु पाण ॥ १ ॥

भावार्थः—(आतिथ्य) खर्चा; क्षात्रवट, क्षमता, व्यवस्था, हार-व्यवहार, नीति, स्वाभिमान और पराक्रम ये सभी (गुण) उदयसिंहजी में एकत्रित (मिलते) थे।

[रचयिताः—डूँगरसिंह भाटी]

महाराजा उम्मेदसिंह, जोधपुर

दोहा

कियो न निज स्वारथ कदे, अब किय कियो अचाण ।
रे नृप तजतां जोधपुर, करतां सुरग पयाण ॥ १ ॥

भावार्थः—आपने कभी अपने स्वार्थ साधन का कार्य नहीं किया। किन्तु हे नरेश ! जोधपुर छोड़ कर स्वर्गारोहण का यह अचानक कार्य कैसे कर डाला ?

सुख दियौ सबने सदा, आज दियो किम खेद ।
आ उमेद नृप ! आपसूं, सपने नहीं उमेद ॥ २ ॥

भावार्थः—आपने हमेशा सब को सुख दिया था फिर आज यह दुख क्यों ? हे उम्मेदसिंह ! इस प्रकार की उम्मीद तो आपसे स्वप्न में भी नहीं की थी।

कै मैं मोटो अघ कियो, कै हर कियो अकाज ।
श्रवणां मरण सुणावियो, नृप उम्मेद रो आज ॥ ३ ॥

भावार्थः—या तो मैंने महान् पाप किया है या ईश्वर ने अनर्थ किया है, जिससे आज महाराजा उम्मेदसिंह का स्वर्गवास, कान सुन रहे हैं।

कुल ऊँचो ऊँचा करतब, मन ऊँचो महपत्त।
ऊँचो नाम उम्मेद रो, हो नित ऊँचो हत्त ॥ ४ ॥

भावार्थः—उसका कुल उच्च था, उसी तरह उस के कार्य भी ऊँचे थे, उस महिपति का मन ऊँचा था, नाम 'उम्मेद' ऊँचा था और इसी प्रकार उसके हाथ भी हमेशा ऊँचे (दानी) थे।

आज मरूधर ऊपरां, अंबर पड्यो करूर।
नृप उमेद दीसे नहीं, दीसै सुरपुर दूर ॥ ५ ॥

भावार्थः—आज मारवाड़ पर क्रूर आसमान टूट पड़ा है। महाराज उम्मेदसिंह नज़र नहीं आते हैं और स्वर्ग भी दूर दिखाई देता है।

बरसै आज उमेद बिण, नेणा नीर हमेस।
मेह न अतरो मालवे, जतरो मरुधर देश ॥ ६ ॥

भावार्थः—आज उम्मेदसिंह के विरह में मारवाड़ के नेत्रों से हमेशा इतनी अश्रुधारा बरस रही है, जितनी मालवा में वर्षा भी नहीं होती।

करी न सपने ही कदे, पूर निभायो प्रेम।
आज उमेद अजीत सूँ, करी जुदाई केम ॥ ७ ॥

भावार्थः—आपने स्वप्न में भी कभी जुदाई नहीं की बल्कि पूर्ण स्नेह निभाया था लेकिन हे उम्मेदसिंह ! आज अपने प्यारे बन्धु अजीत से यह जुदाई कैसे की ?

मन उमेद रहगी मणी, रहगी बात न जोर ।
कुण उमेद पूरी करे, नृप उम्मेद बिण ओर ॥ ८ ॥

भावार्थ:-मन की आशा (मन में ही) बनी रही,वह बात (कल्पना) ही रह गई; उस पर वश नहीं चलता। हाँ! उन उम्मेदसिंह महीप के बिना अन्य कौन उम्मीद पूर्ण कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

भटियाणी सीता जसी, भाई भरत अजीत ।
सेवक सुत हणवन्त सा, तैं तजिया किण रीत ॥ ९ ॥

भावार्थ:—सीता जैसी पत्नी भटियाणी, भरत जैसे भाई अजीत और हनुमान जैसे पुत्र हनुवंत को तूने किस प्रकार छोड़ दिया ?

अधकी रखी उमेद सी, जसी मान जसवन्त ।
वे बांता सारी अबै, हातां तो हणवंत ॥१०॥

भावार्थः - जैसी मानसिंह और जसवतसिंह ने अपनी परम्परा रक्खी; उससे उम्मेदसिंह ने अधिक ही रक्खी। वे सारी बातें (परम्पराएँ) अब हे हनुवंतसिंह तेरे हाथ में (निभानी) है।

[नाथूदान महियारिया, उदयपुर]

सोरठा

हिन्दू मूसलमान, सिक्ख इसाई पारसी ।
सगला झुरै समान, अधिपति गयो उमेद सी ॥ ९ ॥

भावार्थ:—हिंदू-मुस्लिम, सिक्ख, इसाई और पारसी अर्थात् सारा मानव-समाज बराबर क्रन्द्रन करता हुआ कहता है कि राजा उम्मेद चला गया।

पांणी तणो प्रबन्ध, भूपत करगो जोधपुर ।
करगो धरम कमंध, सुरपुर गयो उमेद सी ॥१०॥

भावार्थः—जोधपुर नगर में पानी का (बराबर कष्ट रहता था, उसका) सुप्रबन्ध कर दिया और ऐसा धर्म-कार्य करता हुआ उम्मेदसिंह स्वर्ग पहुँचा।

रैयत हित राजाह, राज सता देतो रयो।
करगो शुभ काजाह, इलपर भूप उमेद सी ॥११॥

भावार्थः—वह नरेश प्रजाहित के लिये शासन सत्ता (जनता को) देता गया। वह उम्मेदसिंह दुनियाँ में रह कर भले (अच्छे) काम कर गया।

कीधो कोप अकाल, छिनुवा में मुरधर छिती।
पूर करी प्रतिपाल, श्रो नृप गयो उमेद सी ॥१२॥

भावार्थः—वि० १९९६ में दुर्भिक्ष ने मरुधर-भूमि पर दुष्काल का प्रकोप हुआ और उस विकट समय में तहे दिल से जनता का प्रतिपालन किया। वह (दयालु-उदार) उम्मेदसिंह चल बसा।

परबँध पांणीरोह, गांम गांम करगो घणो।
पोखण प्राणीरोह, श्रो नृप गयो उमेद सी ॥१३॥

भावार्थः—मारवाड़ में पानी का स्थान २ पर अभाव रहता है, कष्ट उठाना पड़ता है लेकिन इसने गाँव २ में सुप्रबन्ध कर जनता का पोषण किया था। वह राजा उम्मेदसिंह चला गया।

दाता देस विदेस, रुखवालो निज रैतरो।
निरमल वीर नरेश, आज न रहयो उमेद सी ॥१४॥

भावार्थः—वह दानी देश-विदेश में रहते हुए भी अपनी प्रजा का हमेशां रक्षक बना रहता था। ऐसा शुद्ध और वीर अधीश्वर उम्मेदसिंह आज (संसार में) नहीं रहा है।

महपतियां गिरमेर, सत सम्मति दाता सिरै ।
लोक सकल जसलेर, सुरपुर गयो उमेद सी ॥१५॥

भावार्थः—भूपतियों में सुमेर और दानियों एवं सुमति देने वालों का सरदार था। सब लोगों से सुयश प्राप्त कर वह उम्मेदसिंह स्वर्ग प्रयाण कर गया।

सुकरत क्रम साजाह, सह जीवण करगो सफल ।
मुरधर महाराजाह, सुरपुर गयो उमेद सी ॥१६॥

भावार्थ-—अपने वैभव और जीवन का शुभ कामों में उपयोग कर उसे सब तरह से सफल बनाया, ऐसा वह मरुधराधीश उम्मेदसिंह सुर लोक में चला गया।

मुरधर री माताह, कुरलावैं कुरजां कली ।
आजे अनदाताह, इण मत फेर उमेद सी ॥१७॥

नवकोटि मारवाड़ की सारी माताएँ (या मरुभूमि) करुण क्रंदन का आह्वान करती हुई कहती हैं कि हे अन्न दाता ! उम्मेदसिंह ! (एक बार तो) इस संसार में आप फिर पधारिये ।

अै महाराज कंवार, पिता भक्त अणपाररा ।
आंरै शोक अपार, जातां भूप उमेद सी ॥१८॥

भावार्थः—ये राजकुमार असीम पितृ भक्त हैं। हे उम्मेदसिंह ! तेरे जाने से इन्हें बेहद चिंता-दुःख है।

भारत वाला भूप, सगला छाया शोक में ।
राजा वांरो रूप, आज न रयो उमेद सी ॥१९॥

भावार्थः—ये मारवाड़ के सारे सामन्त; जागीरदार रो रहे हैं! क्योंकि क्षात्रकुल की नैया उम्मेदसिंह—आज नहीं रही इसलिये किससे भव पार करें?

सह छत्री सिरदार, सांसै पड़िया सोक में।
हो नृप तारणहार, आज न रयो उमेद सी ॥२६॥

भावार्थ:—सारे क्षत्रिय सरदार शोक और संकट में पड़ गये हैं; क्यों कि जो उबारने वाला था, वह राजा उम्मेद आज नहीं रहा-चल बसा।

नरपत नवकोटीह, जीवण छत्री जात रो।
हुई हांण मोटीह, ओ नृप गयो उमेद सी ॥३०॥

हे नवकोटि (मरुधर) स्वामी, क्षत्रिय जाति के प्राण। उस नरेश उम्मेदसिंह के जाने से महान हानि हुई है।

दुमना मरजीदान, ए. डी. सी. नृप आपरा।
ओ दुगड़ो नो असमान, आज न रयो उमेदसी ॥३१॥

भावार्थ:—हे नरेश आपके सारे कृपा पात्र. ए. डी. सी. चिंतित हैं (येही क्या बल्कि धरती) आकाश भी दुखी हैं क्योंकि हे उम्मेसिंह? आज आप हमारे बीच नहीं रहे हैं।

उदकी रो आधार, कमंध भूप नव कोट रो।
दुमला माफीदार, आज न रयो उमेद सी ॥३२॥

भावार्थः—माफी भोक्ताओं का आश्रय, नवकोटि और राठौड़ों के राजा! हे उम्मेदसिंह आज तेरे न रहने से सब व्यथित हैं।

करसा कुरलावेह, दूणा मरूधर देस रा।
घर घर गरलावेह, आज न भूप उम्मेद सी ॥३३॥

भावार्थ:—औरों की अपेक्षा मारवाड़ के किसान दुगुने रो रहे हैं घर घर त्राहि-त्राहि मच रही है ! हाय ! आज (हमारे बीच) उम्मेदसिंह नहीं ॥

पूरा दुखी पहाड़, रोय रोय राता थया ।
बलती दवै बराड़, अधपत गयो उमेद सी ॥३४॥

भावार्थ:—पहाड़ और टीले सारे दुखी हैं वे रो रो कर रक्त वर्ण हो गये हैं । धरती धाड़ मार कर रो रही है । हाय ! अधीश्वर उम्मेदसिंह चला गया ।

रोवै रूखंडलाह, कुम्हलाणी जीवण कली ।
तावै तावड़लाह, अधिपति गयो उमेद सी ॥३५॥

भावार्थ:—वृक्षलतादि रो रहे हैं । उनकी जीवन कलियाँ कुम्हला गई हैं । धूप भी (अधिक) तप्त हो गई है । ये सब कह रहे हैं—आज अधिराज उम्मेद चला गया ।

ऊनी सासा आंण, वरलां बालै बांठका ।
जंगल रोवै जांण, अधिपति गयो उमेद सी ॥३६॥

भावार्थ:—दुःख भरी गर्म आहें (श्वास) निकालती हुई जनता चिल्ला···रही है···। सारा उपवन यह जानकर रो रहा है कि राजेश्वर उम्मेदसिंह चला गया है ।

धरती दुख धारेह, ऊनी झाला ऊथलै ।
लोय झुरै लारेह, अधिपति गयो उमेद सी ॥३७॥

भावार्थ:—भूमि दुःख धारणकर गर्म आहें उगल रही है । नेत्र रुदन कर रहे हैं, आज स्वामी उम्मेदसिंह चल बसा है ।

घोरा दुखिया धाप, काया ने पलटण करै ।
सो भुगते संताप, आज न भूप उमेद सी ॥३८॥

भावार्थः—उम्मेदसिंह के चल बसने पर आज दुःखी-पीड़ितों की कायापलट होगई (दशा बिगड़ गई) और सब ही संतप्त हो रहे हैं ।

न्याय नरण निरपेख, निरधारां आधार नृप ।
लाखां सद्गुण लेख, आज न भूप उमेद सी ॥३९॥

भावार्थः—निष्पक्ष न्यायकारी, निराधारों के आधार, लाखों सद्गुण (जिसमें) देखे, वह महिप उम्मेदसिंह आज संसार में नहीं है ।

खमा करण भगवांन ने, आंगी भूप उम्मेद ।
घणी खमावालो गयो, खित मुरधर ने खेद ॥४०॥

भावार्थः—सर्वान्तर्यामी प्रभु के दरबार में (खमा) अभिवादन करना स्वीकार कर, (लाखों से) अभिवादन कराने वाला चला गया जिसका मरु भूमि को अत्यन्त खेद है ।

दया तणो दरियाह, लहरातो इँह लोक में ।
वेगौ गयो विलाय, मुरधर भूप उमेद सी ॥४१॥

भावार्थः—इस संसार में जो करूणा का सिन्धु लहराता था, वह सिन्धु रूपी मरु भूमि-पति उम्मेदसिंह शीघ्र ही नष्ट हो गया ।

लिखिया टलै न लेख, छोटां मोटां सारखा ।
वरस चमाली वेख, सुरपुर गयो उमेद सी ॥४२॥

भावार्थः—विधि-लिखित विधान टाला नहीं जा सकता, वह तो छोटे-बड़े-रंक-राव सबको समान रूप से स्वीकार करना पड़ता है ।

इसी विधान के अनुसार उम्मेदसिंह चँवालीस वर्ष की (अल्प) आयु में स्वर्ग सिधार गया।

प्रथीनाथ परलोक, वण पालग भूपत गयो ।
सकल मुरधरा सोक, अणथग करै उमेद सी ॥४३॥

भावार्थः—कइयों का पालनहार नरेश, पृथ्वीनाथ स्वर्ग सिधार गया जिससे सारी मारवाड़ बेहद शोक कर रही है।

डेरा किया दिनेस, आप थड़ै रे ऊपरा ।
निरखां कद नरेस, इण भव फेर उमेद सी ॥४४॥

भावार्थः—आपने तो हे (कुल) सूर्य बड़े (श्मशान) के ऊपर जाकर डेरे डाल दिये। हे स्वामी उम्मेदसिंह ! अब इस संसार में आपको फिर कब देखेंगे।

दोय हजार रू तिन्न, संमत मास असाढ़ में ।
वद पांचमरै दिन्न, सुरपुर गयो उमेद सी ॥४५॥

भावार्थः—वि० सं० २००३ आषाढ़ कृष्णा ५ को उम्मेदसिंह (मरुधर स्वामी) सुर पुर प्रयाण कर गया।

नृप उमेद री ईस, आंणे सांती आतमा ।
जपै जाय जगदीश, उदयराज मुरधर इला ॥४६॥

हे भगवान ! उदयराज उज्ज्वल और मरुभूमि यहां जपती है कि महाराज उम्मेदसिंह की दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करना।

[रचयिताः— उदयराज उज्ज्वल]

दोहा

दुख भंजन मृदु बोलता, मारे ताज उम्मेद ।
आबू में से ढूंढियां, लग्यो न एको भेद ॥ १ ॥

भावार्थः—कष्ट हारी, मृदुभाषी मेरे सरताज उम्मेदसिंहजी को आबू में तलाश किया। मगर (उनके जाने के) रहस्य का पता ही नहीं चला ॥

अवखी विरियाँ ना लखी, नाव पड़ी मझधार ।
जोधाणे रे देश रो, लेग्यो खेवन हार ॥ २ ॥

भावार्थः—हे भगवान ! जब कि नैया मझधार में पड़ी हुई है ऐसे कठिन समय को तुमने नहीं देखा और मारवाड़ देश के (नैया) खेने वाले को ले ही गये ॥

रुदन प्रजा मरूदेश रो, हुयोज हाहाकार ।
किन विमान सूं चढ़ गया, मरूधर रा अवतार ॥ ३ ॥

भावार्थः—मारवाड़ की प्रजा के करुणाक्रंदन से हाहाकार मच गया। हे मारवाड़ के अवतारी (महा पुरुष) ! आप किस विमान से (बिना कुछ सुने ही) स्वर्ग की ओर चढ गये।

प्रजा पुकारे जोड़ कर, सुण जो दीना नाथ ।
पूरण प्रेम आनंद सूं, दीजो सब दुख साथ ॥ ४ ॥

भावार्थः—प्रजाजन कर बद्ध प्रार्थना करते हैं कि हे दीनानाथ ! (अब उम्मेद के जाने बाद क्या है) अब तो आप आनंद पूर्वक सब दुख साथ ही दीजिये न ! अर्थात् इतने निर्दय क्यों हो गये।

सोरठा

प्रभु थांरे टोटोह, मोटो इसड़ो कद हुवो ।
कर मन ने खोटोह, खोस्यो नाथ उमेद सी ॥ १ ॥

भावार्थः—हे नाथ ! आपके (घर) इतना घाटा किस दिन हुआ कि मन बिगाड़कर हमारे स्वामी उम्मेद को ही छीन लिया ।

दुखियारा हा नाथ, किय अनाथ सगला अठ ।
थारे कुण से हाथ, लेग्यो नाथ उम्मेद सी ॥ २ ॥

भावार्थः—वे दुखियों के (आधार) स्वामी थे उन सब का अनाथ (निराधार) कर हे प्रभु ! किस हाथ से हमारे स्वामी उम्मेद को ले गये ।

दुखियारा सरदार, बिन उम्मेद किना इमें ।
भूलकरी करतार, हा-हाकार जोधाण में ॥ ३ ॥

भावार्थः—वे दुःखियों के (दुःखहारी) सरदार थे । उन-उम्मेद से रहित कर हे भगवान ! आपने जो भूल की, इसी से सारे मारवाड़ में हाहाकार मच गया है ।

पाचूं राजकुमार, पिता मिलन आबू चल्या ।
भूल करी करतार, लेग्यो नाथ उमेद सी ॥ ४ ॥

भावर्थः—अपने पूज्य पितासे मिलने पांचों युवराज आबू आये इससे पूर्व ही भगवान उम्मेदसिंहजी को ले गये यह उन्होंने भूल ही की । अर्थात् मिलने तो देनाथा ।

सब जगरो बालोह, रखवालो मरु देश रो ।
लेग्यो मतवालोह, हृदय काढ़ उम्मेद सी ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो सब संसार का लाडला था, मारवाड़ का रक्षक था वह मतवाला उम्मेदसिंह जाते हुए हमारे दिलों को भी निकाल कर ले गया ॥

दरशण री उम्मेद, वांटां जोवें मरूधरा ।
सुणियो इसड़ो भेद, क्यों पोढिया चुप नींद में ॥ ६ ॥

भावार्थः—दर्शनों की आशा लगाकर मारवाड़ प्रतीक्षा कर रहा था ऐसे समय चुपचाप अनत निद्रा में सोने का रहस्य सुन पड़ा अर्थात् मारवाड़ी आशा लगाये बैठे थे कि हमारे स्वामी आबू से स्वास्थ्य लाभ करके आवेंगे तब यह दुःखद खबर मिली कि स्वामी का स्वर्ग वास हो गया।

मसलां दोनू हाथ, नाथ विनय अब भी सुणों ।
दे दो दीनानाथ, मांरो भूप उम्मेदसिंह ॥ ७ ॥

भावार्थः—हम दोनों हाथ मलते ही रह गये । हे नाथ! हम अब भी प्रार्थना करते हैं कि हे दीनों के स्वामी! दयाकर हमारे मालिक उम्मेदसिंह को वापस दे दो न !

थेंहों दीनानाथ, दीनन की करूणा सुणो ।
दे दो पाछो नाथ, जोधाणा रो जोध ने ॥ ८ ॥

भावार्थः—आप तो गरीबों के मालिक हो, उनकी पुकार सुनने वाले हो तो हे स्वामी! उस जोधपुर के योद्धा (उम्मेदसिंह) को पीछा दे दीजिये ।

मरूधर रो सिरमोड़, रण बांको राठोड़ जग ।
अरज करां तन तोड़, दे दो नाथ उम्मेदसिंह ॥ ९ ॥

भावार्थः—उस मारवाड़ के सिरताज, जगत के रण बांकुरे राठौड़ उम्मेदसिंह के लिए दिल तोड़ कर-हार्दिक निवेदन करते हैं कि उसे वापस दे दो।

शेष फणां रे गोद, प्रभु पोढ्या लक्ष्मी सहित ।
किण विध आयो मोद, नृप उम्मेद खोसत थने ॥१०॥

भावार्थः—आप तो लक्ष्मी जी सहित शेष शैय्या पर फनों की छाया में पोढ़े हुए थे तब हमारे स्वामी उम्मेदसिंहजी को छीनते हुए आपको किस प्रकार खुशी हुई ?

हनुंवत जग वालोह, करसुं कारज सारिया ।
संग ले सब हालोह, इण री सेवा कारणे ॥११॥

भावार्थः—जगवल्लभ हनवंतसिंहजी उन (उम्मेदसिंहजी) की अन्तिम सेवा के लिये सब को साथ लेकर श्मशान तक गये और सारी क्रिया अपने हाथों सम्पन्न की (अर्थात् राजाओं में बाप के मरने पर बेटा तुरन्त गद्दी पर बैठ जाता है और पिता की अन्तिम क्रिया पुरोहित या अन्य आत्मीय जन द्वारा सम्पन्न कराई जाती है । लेकिन हनवंतसिंह जी ने इस परम्परा को तोड़ अपनी पितृ भक्ति का अपूर्व उदाहरण पेश किया ।)

तो सम कठिन मिलेह, आज्ञाकारी पुत्र जग ।
शीश छत्र धारेह, कोड़ युगां राजस करो ॥१२॥

भावार्थः—पितृ भक्ति में तेरे जैसा सुपुत्र संसार में कठिनाई से ही मिल सकता है : आप सिर पर छत्र धारण कर कोटि युग तक शासन करिये ।

(रचयिता—महाराज विजयसिंह राठौड़)

सोरठा

दीसै बिरंगौ देस, पूर बिरंगौ जौधपुर ।
बिरंगी प्रजा बिसेस, गौ नृप सुरग उमेदसी ॥ १ ॥

भावार्थ—नरपति उम्मेदसिंह के स्वर्गगामी होने से सारा देश फीका मालूम होता है; जोधपुर तो और अधिक फीका दिखता है और प्रजा अत्यंत हतप्रभ प्रतीत हो रही है।

पिरजा करतौ प्यार, पिता मात सम पालतौ ।
करी बुरी करतार, ऊ नृप गयौ उम्मेदसी ॥ २ ॥

भावार्थ:—जो अपनी प्रजा का पिता माता के समान पालन पोषण करता था वह महाराजा उम्मेदसिंह चला गया। प्रभु ने बहुत ही बुरा किया।

पिरजा प्रतपालीह, करणालौ नवकोट में ।
हिय झालां हालीह, ऊ नृप गयौ उमेदसी ॥ ३ ॥

भावार्थ:—जो प्रजापाल मारवाड़ में सूर्य के समान था वह महाराजा उम्मेदसिंह चला गया। उसके वियोग से हमारे हृदयों में शोक ज्वालायें उठ रही हैं।

जीतां जीवारीह, पिरजा री जै रै पखै ।
हरतां हिंय हारीह, मुरधर भूप उमेदसी ॥ ४ ॥

भावार्थ:—जिसके जीवित रहने पर ही प्रजा की जीविका निर्भर थी उस मरुधरपति उम्मेदसिंह के हरण से प्रजा का हृदय ही बैठ गया है।

आंसू झरै अपार, नर नारी नवकोट रै ।
प्रजा प्रेम अणपार, सुरपुर गयौ उमैदसी ॥ ५ ॥

भावार्थ:—अपार प्रेम के कारण मारवाड़ निवासी नर नारियों की आंखों से अविरल अश्रु धार बह रही है। हा ! उम्मेदसिंह स्वर्गवासी हो गया।

नर नारी निरखेह, अंत सवारी आपरी ।
घर घर वे बिलखेह, अपणौ गयौ उमेदसी ॥ ६ ॥

भावार्थः महाराज का अन्तिम जलूस देख कर बिलखते हुए स्त्री पुरुष कहते हैं कि हमारा उम्मेदसिंह आज हमसे बिछुड़ गया ।

करूणा कुरलावेह, नर नारी नवकोट रा ।
जग छेला जावेह, अपणौ धणी उमेदसी ॥ ७ ॥

भावार्थः—द्रवित हृदय हो मारवाड़ के नरनारी क्रन्दन कर रहे हैं । हमारा स्वामी उम्मेदसिंह संसार से चला जा रहा है ।

दोहा

प्राण समो राखी प्रजा, प्रजा तणो नृप प्राण ।
ऊ नहँ रह्यो उमेदसी, भली न की भगवाण ॥ १ ॥

भावार्थः—जिसने अपनी प्रजा को प्राण के समान समझा था और प्रजा को भी जो प्राणोपम प्रिय था, हा ! वह उम्मेदसिंह संसार में नहीं रहा । भगवान ने भला नहीं किया ।

[रचयिता जगदीशसिंह गहलोत]

गीत

आबू गिर जाणं नृपत आ सोची,
सहल करण हालो सब साथ ।
पहुँच्यां उठै, पेटगी पीड़ा,
निपट वधी जोधाणै नाथ ॥१॥
सुरजन वैद डाकदर सारा,
वां सूं हुआ किया उपचार ।

कोड़ उपाव करे सब थाका,
हाथ मसल बैठा सब हार ॥२॥

आखर देख मरण असवारी,
गढपतिया रौवै सब गोत ।
किरिया करम वेद विध कीधा,
दी वी कांध हणवँत दैसोत ॥३॥

मास असाढ वदी तिथ पांचम,
सहस दोय सम्वत सर च्यार ।
मिरत लोक छौडे महाराजा,
पति परलोक गया पाधार ॥४॥

इज्जत घणी करी अमरावां,
अपणाई रजपूती आप ।
कसर घणी म्हांरै कमधजिया,
मिणधारी थांरी मा बाप ॥५॥

छिन में छोड़ आप छत्रधारी,
मरण री वेदन अणमाप ।
खारी विरह हिया में खटकै,
पख भारी थारी धणियार ॥६॥

देसाटण जावण अनदाता,
पावण प्रभू जोत परकास ।
वंका नृप वैकुण्ठ बसावण,
आण उमेद फता नहँ आस ॥७॥

भावार्थः—महाराजा ने आबू पर्वत पर जाने के लिये विचार किया कि सब लोग वहां सैर करने को चलें। वहां पहुँचते ही जोधपुरेश के उदर में अत्यंत पीड़ा होने लगी और वह असाध्य होती गई— सर्जन, वैद्य, हकीम और डॉक्टर सभी ने उनसे हो सका वह उपचार करने में कोई त्रुटि नहीं की, किन्तु सब उपाय करने पर भी कोई सफलता नहीं मिली और सब हार-थक कर हाथ मसल बैठे। आखिर सब को वह अन्तिम-सवारी देखनी पड़ी जिसे देख कर सब राजा लोग और सगोत्री जन रो पड़े। देशपति हनुमन्तसिंह ने वेद-विधि के अनुसार सब क्रिया कर्म किये और स्वयं अर्थी के कंधा लगाया। संवत् दो हजार चार की आषाढ कृष्णा पंचमी को महाराजा इस मृत्यु लोक को छोड़ कर परलोक पधार गये। हे मणिधारी कमधजिया मा बाप! आपने अपने उमरावों की बड़ी इज्जत की थी और आपने राजपूतों को अपना ली थी। आप की हमारे लिये अपूर्व क्षति है। आप हमें क्षण भर में छोड़ गये। हे छत्रधारी! आपके निधन की वेदना असीम है। आप के प्रबल पक्ष एवं स्वामित्व का कटु वियोग हृदय में शल्य की तरह खटक रहा है। प्रभु की ज्योति का प्रकाश पाने के लिये देशाटनार्थ जाने वाले उस अन्नदाता, वैकुंठ को बसाने वाले उस बांके नृपति उम्मेदसिंह के आने की कोई आशा नहीं है।

सोरठा

बिलखै बारंबार, महाराणी निज मोह सूं।
आतम रा आधार, आज्यो धणी उमेदसी ॥ १ ॥

भावार्थः—महाराणी अपने मोह वश बार बार बिलख रही है कि हे मेरी आत्मा के आधार, स्वामी उम्मेदसिंह! आ जाओ।

चित रा मिट गा चाव, भाव भरत ज्यूं भ्रातरौ।
साचौ हित सरसाव, आज्यो आप उमेदसी ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस भाई का आप के प्रति भरत का सा भाव था, उस के सब चित्त के चाव मिट गये हैं। उस के प्रति सच्चा प्रेम सरसाने को हे उम्मेदसिंह ! आ जाओ।

जोधाणै जामीह, बामी बँध आज्यो वले ।
खटकै उर खामीह, नामी नृप कम नीपजै ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे जोधपुर के स्वामी ! हे बामी बंध ! फिर आ जाओ। आपकी खामी हृदय में बहुत खटक रही है क्योंकि आप जैसे नामी नृपति बहुत कम पैदा होते हैं।

मिट गौ मन रौ मांण, भांण दरस दीजौ भलै ।
जातां नृप जोधाण, हाण फता घर घर हुई ॥ ४ ॥

भावार्थः—हमारे मन का सब मान मिट गया है। हे कुल सूर्य ! हमें फिर दर्शन दो।

जोधपुरेश के चले जाने से किसी एक की नहीं—घर घर की महती क्षति हुई है।

दुख उपज्यौ सह देस नै, पड्यौ काल रौ पंज ।
सह्यौ न जावै सज्जनां, राजमात रौ रंज ॥ १ ॥

भावार्थः—कराल काल के प्रकोप से सारे देश ही को असह्य दुःख हो रहा है, परन्तु राजमाता की व्यथा तो देखी नहीं जाती।

मात पुकारै सुरधरा, वेहद करै विलाप ।
भव भव में भूलां नहीं, धणी तूझ धणियाप ॥ २ ॥

भावार्थः—माता मरुधरा वेहद विलाप करती हुई तुम्हें पुकार रही है। हे स्वामी, आपके स्वामित्व एवं कृपा को हम जन्म जन्मान्तर तक नहीं भूलेंगे।

श्री उमेद जातां सुरग, सह बिलखां सरदार ।
किमकर मन गाढौ करां, परजा करै पुकार ॥ ३ ॥

भावार्थः—श्री उम्मेदसिंह के स्वर्गगामी हो जाने से हम सब सरदार लोग विलख रहे हैं। प्रजा भी पुकार रही है कि किस प्रकार हम अपने मन को कठोर बनावें।

ये ए० डी० सी० आपरा, मोटा मरजीदान ।
किम भूलै कमधेस नै, मूँघो राख्यौ मान ॥ ४ ॥

भावार्थः—आपके ये ए० डी० सी० लोग और बड़े २ कृपा-पात्र आप कमधेश को कैसे भूलें जिनका बेहद मान आपने रक्खा था।

राजघराणौ सह झुरै, मुत्सद्दी उमराव ।
किण सूं रोकी नहँ रूकी, नृप उमेद री नाव ॥ ५ ॥

भावार्थः—सारा राजपरिवार, उमराव और मुत्सद्दी लोग रो रहे हैं, परन्तु नृपति उम्मेदसिंह की वह 'नाव' किसी के रोके नहीं रुकी।

जामी तज गा जोधपुर, बैकुँठ कीधौ वास ।
है अजीत, हिम्मत, हरी, देव, दिलीप उदास ॥ ६ ॥

हे स्वामी ! आप जोधपुर छोड़ कर चले गये। आप के वियोग में अजीतसिंह, हिम्मतसिंह, हरिसिंह, देवीसिंह और दिलीपसिंह उदास हो रहे हैं।

भयौ विछेवौ भ्रात रौ, कई कीन्ह करतार ।
ये अजीत बिन आप रे, हिम्मत रहिया हार ॥ ७ ॥

भावार्थः—हा ! भाई का भाई से बिछोह हो गया। प्रभु ने यह क्या किया। ये अजीतसिंह आपके बिना हिम्मत हार बैठे हैं।

जुदा हुआ महाराज सूं, रुके न आंसू धार ।
आज बंधु बिन एकला, ए अजीत इण बार ॥ ८॥

भावार्थः—आज अपने अग्रज के बिना ये अजीत एकाकी हो गये। वे महाराज से जुदा पड़ गये हैं, उनकी अश्रु धारा रुक नहीं रही है।

चख जल चालै चौसरा, सारौ सहर उदास ।
मुरधर बिलखै मारुत्रा, अब नहँ दरसण आस ॥ ६ ॥

भावार्थः—सारा शहर उदास हुआ बैठा है, सब के अविरल अश्रु धारा बह रही है । मारवाड़ बिलख रही है-हा ! उस मारू के दर्शन की अब कोई आशा नहीं ।

रजवट बट लीधां रह्यौ, मारू मुरधर मौड़ ।
समै देख नहँ संकियौ, रह्यौ सुजस राठौड़ ॥१०॥

भावार्थः—वह मरुधर का शीर्ष स्थानीय मारू राजपूती बांकेपन को लिये हुए ही रहा। वह जमाने को देख कर कभी सशंक नहीं हुआ। उसका सुयश व्याप्त हो रहा है।

बोल बंध अर वीरता, मूंछां तणी मरोड़ ।
अडर पणौ अँग ओपती, राज भुजां राठौड़ ॥११॥

भावार्थः—हे राठोड़ ! आप की वाणी, आपके साफे के बंध और आपकी मूंछों की मरोड़ से वीरता और निर्भयता आपकी भुजाओं और शरीर पर सुशोभित रहती थी।

तिका बात मुख तोलता, अडिग निभाता आप ।
दया, कीरती, काछ दृढ़, मोटा गुण मा बाप ॥१२॥

भावार्थः—जो भी बात मुँह से निकल जाती, उसे: आप बड़ी दृढ़ता से निभाते थे। हे मा-बाप! आप में, कीर्ति, दया और दृढता के महान् गुण थे।

जोधाणै पति जावतां, खारी मन में खेद।
बिलखत जोवां बाटड़ी, आवण नहीं उमेद ॥१३॥

भावार्थः—जोधपुरेश के चले जाने से अत्यंत कटु वेदना मन में समा गई है। बिलखते हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं परन्तु उम्मेद के आने की कोई उम्मीद नहीं है।

[रचयिताः— ठा० फतहसिंह आसोपा]

महाराजा उम्मेदसिंह (कोटा)

दोहा

गुन गाहक उम्मेद ने; किय पयान सुर थान।
छटपटाय हा! रह गये; कढ़े न ये धिक प्रान ॥ १ ॥

सवैया

भूप उमेद रहे हँसते, अपराध हुवै कटु बैन कह्यो ना।
भाव उदार रखी समता, निज, अन्य के धर्म में भेद गह्यो ना ॥
दीन दयाल विशाल हिये खुद, कष्ट सह्यो पर-दुःख सह्यो ना।
गाज परो विधना के अकाज पै, आज गरीब निवाज रह्यो ना ॥ २ ॥

कवित्त

हा! हा! करि एक कोटि कंठ की कराल ध्वनि,
उठी सबै राजथान हाडा को निधन है ॥

क्रन्दन की कूक मूक नभ को विलोड़ रही,
अंधकार भासें हा ! संहार उन बिन है ॥
कहत बने न या कलेजे की असह्य घात,
छीजें असहाय हाय, हियो छिन छिन है ॥
मोसे निराधार के आधार वे सिधार गये,
जग में उमेद बिन जीवन कठिन है ॥३॥

अपूर्ण–
दया का अथाह सिंधु प्रेम का प्रवाह वह,
सच्चा नर नाह प्रजा सुख में झुला गया।
रंच हू न कुटिल प्रपंच न्याय–मंच पर,
राजा–प्रजा बीच गांठ भक्ति की घुला गया।
उजड़े बसाने वाला, सूखे सरसाने वाला,
नेह से हँसाने वाला, जग को रुला गया ॥४॥

भावार्थः—गुणों के ग्राहक महाराव उम्मेदसिंह, स्वर्ग के लिये प्रस्थान कर गये। (ऐसे गुणग्राही के जाने पर भी) हाय! प्राण छटपटा कर रह गये! धिक्कार है इन्हें ये निकल क्यों नहीं गये ?

नरेश उम्मेदसिंह (हमेशा) हँसते रहते थे, किसी की गलती हो जाने पर भी कभी कड़वी बात–चुभते वचन–नहीं कहे। उन्होंने हमेशा उदार और समानता का भाव रक्खा। अपने और पराये धर्म में कभी भेद–भाव स्वीकार नहीं किया। उन दीन दयालु, प्रजा वत्सल, दयादिली ने खुद के कष्ट को तो सहन कर लिया परन्तु उनसे दूसरों का दुःख नहीं सहा गया। ऐसे गरीबों को निभाने वाले आज नहीं रहे। इस अनर्थ के करने वाले विधाता पर बिजली पड़ो।

हाय ! हाय !! कोटेश्वर हाड़ा का आज निधन हो गया (जिससे) एक करोड़ प्रजाजन के शोक भरे भयंकर क्रंदन से सारा राजस्थान व्याप्त हो गया। इस रुदन की कूक और मूक वेदना आकाश का मंथन करने लगी। आज उनके बिना संसार में अंधकार मालूम हो रहा है। कलेजे पर जो असहनीय आघात हुआ है, वह वर्णनातीत है। हाय ! क्षण-क्षण में हृदय का क्षय हुआ जा रहा है। मेरे जैसे निराश्रितों के आश्रय वे पधार गये। संसार में उनके बिना जीना ही कठिन हो गया।

वह करुणा का अथाह सागर, वह स्नेह का स्रोत, वह सच्चा हृदयेश्वर अपनी जनता को सुख के हिंडोले में झुला गया। उसने न्याय-मंच पर कुटिलता या प्रपंच का लेश मात्र भी प्रवेश नहीं होने दिया। बल्कि राजा प्रजा के बीच प्रेम-भक्ति-की गांठ घुला कर लगा गया (ताकि कभी खुले ही नहीं)। अर्थात अटूट भक्ति-भाव पैदा कर गया। वह उजड़े हुए को बसाने वाला, (अनाश्रितों को आश्रय देने वाला), सूखे हुए को सर सब्ज-हराभरा-नीरस जीवन में रस संचार करने वाला, स्नेह से सब को हँसाने-वाला आज संसार को रुला गया अर्थात् उसके निधन से सब द्रवीभूत हो गये।

[रचयिताः- ठा० केसरीसिंह, कोटा]

किशनसिंह जी गौड़

गीत

पेखै पिंड विसरण जिकां रौ पूठौ।
देखै जार बदन उण हार ॥

किसन कहै सूरत सत केहा।
नर केहा ताप केही नार ॥ १ ॥

वीरत वीर अनै ससि वदनी।
पुणै सूज उत साच पिछाण॥
मवर खलां पर पुर खांमुँहड़ो।
जोवाडै ताय लावा जाण॥ २॥

सूर भड़ां सुकिया सुंदरियां।
चवै कुंवर परगह सूं चोख॥
अफर खलां आनन नर अवरां।
दीठौ जिकां बिलागौ दोख॥ ३॥

गौड़ सिँगार सुवौ खत्रियांगुर।
जोधाणै चाढ़ियौ जल॥
पिँड मुख पीठ न देखी पिसणां।
कुलवंती रा वदन कल॥ ४॥

भावार्थ:—किशनसिंह कहता है, युद्ध में शत्रु जिनकी पीठ देख लें और ससार में जिनके मुख को जार देख लें; वह कैसा तो वीरत्व है और कैसा सतीत्व! वे स्त्रियाँ भी कैसी! सूरजमल का पुत्र कहता है कि पुरुषों और महिलाओं की वीरता की यह सीधी सी सच्ची पहचान है। जो अपना मुँह परपुरुष को और अपनी पीठ शत्रुओं को दिखा दें, उन स्त्री पुरुषों को वर्णसंकर ही समझना। कुँवर अपने परिकर से ठीक ठीक कहता है कि शूर सुभटों की पीठ शत्रुओं ने यदि देखली और स्वकीया सुन्दरियों का आनन यदि परपुरुषों ने देख लिया तो समझो, उन्हें घोर कलंक लग गया।

इस प्रकार जो कहा ही करता था वह क्षत्रिय श्रेष्ठ, गौड़ों का शृङ्गार अपने कथन को सच्चा प्रमाणित कर जोधपुर के गौरव को बढ़ाता हुआ रणभूमि में वीर गति को प्राप्त हो गया। कुलांगना के बदन के समान उस की पीठ शत्रुओं ने कभी नहीं देखी।

[रचयिता:- अज्ञात]

ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य 'पागल'

[स्टेट इतिहासकार पटियाला]

दोहा

दिल दागल दझन लगे, व्याकुल तासु वियोग ।
मैं 'पागल' के विरह में, हम पागल सब लोग ॥ १ ॥

भावार्थ:—तेरी जुदाई में व्याकुल हो रहे हैं, हृदय जलन से दुख रहा है—पीड़ित है और हे 'पागल' तेरे विरह में हम पागल हो गये हैं—सुध-बुध भूल गये हैं।

उद्यत कुल सेवा अधिक, निर उद्यम छिन नाहिं ।
वृद्ध पने हु किशोर पन, हो किशोर मन माहिं ॥ २ ॥

भावार्थ:—वह एक क्षण निकम्मेपन से नहीं रहते थे, अधिकांश जाति-सेवा में लीन रहते थे। वृद्धावस्था आ जाने पर भी किशोरसिंह के मन में युवकपन झलक ताथा।

टिप्पणी:—शाहपुरा के जागीरदार, वंश-भास्कर के टीकाकार ठाकुर किशनसिंह के ये द्वितीय पुत्र थे। आपके बड़े भाई राजस्थान केसरी केसरीसिंह एवं छोटे भाई जोरावरसिंह ने राष्ट्रीय क्रांति युग में भाग लिया। अतः इन सब को शाहपुरा से निर्वासित कर दिया गया। तब ये कोटा, अलवर और अंत में पटियाला रहे। आप भी अपने दोनों भाइयों की भाँति ही राष्ट्र भक्त, समाज सुधारक, विद्वान, कवि एवं इतिहास के ज्ञाता थे। जिनका गुण वर्णन उक्त मर्सियों में किया गया है।

काचौ मन कीन्हें न कवौं, जाचो जोरस जोर ।
वीरा रस राचो हु ते, सांचो सिंह किशोर ॥ ३ ॥

भावार्थः—बड़ी बड़ी प्रबल परीक्षा में भी उसने कभी अपने मन में निर्बलता न आने दी। वह वीर रस में पगा हुआ वास्तव में युवक सिंह ही था।

खेवन वारो जाति सुधिः गो किशोर गुन-भौन ।
नद-अवनति-अब नाव-कुल, खेवन वारो कौन ॥ ४ ॥

भावार्थः—अपने कुल-जाति की सुध बुध लेने वाला गुन धाम किशोरसिंह चल बसा, अब, आज इस अवनति की बड़ी नदी में कुल-नैया खेने वाला कौन है ?

[रचयिता- अक्षयसिंह, रत्नू, अलवर]

—※—

राजस्थान केसरी ठाकुर केसरीसिंह

दोहा

तो जातां हीणी थई, खत्र वट चारण खान ।
केहर ! किण विध कह सका, मन री व्यथा महान ॥ १ ॥

भावार्थः—क्षत्रिय और चारण जाति की तेरे जाने से जो क्षति हुई है और उसके लिये हृदय में जो महान् वेदना है हे केसरीसिंह ! वह हम किस प्रकार कह सकते हैं अर्थात् कही नहीं जा सकती।

[रचयिताः- ठा० ईश्वरदान आशिया, भैंगटिया]

टिप्पणीः—राजस्थान केसरी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ (महाकवि सूर्यमल रचित वंश भास्कर के टीकाकार) श्री किशनसिंह के पुत्र थे। ये शाहपुरा के जागीरदार

विपत गही पै ना तजी, कुल मरयाद रू आन ।
जियो जितै जग–केसरी, रह्यो राखि निज शान ॥ १ ॥
मृत्यू केसरिसिंह तें, हानी हुई महान ।
वह गइ चारणि आन अरु, ढह गइ साहित खान ॥ २ ॥

भावार्थः—उसने विपत्ति को ग्रहण कर लिया मगर अपनी आन और कुल–मर्यादा का कभी त्याग नहीं किया । वह केसरीसिंह जब-तक संसार में जीवित रहा, अपनी शान रख कर ही रहा ।

केसरीसिंह की मृत्यु से महान हानि हुई है । उसके जाने से चारणी–आन (चारणत्व) बह गई और साहित्य की (जो) खानी (थी वह) ढह गई–गिर गई ।

[रचयिताः– डूंगरसिंह भाटी, मोही]

—o❀o—

थे और महाराणा फतहसिंह उदयपुर एवं महाराजा सरदारसिंह जोधपुर के कृपा पात्र के रूप में भी रहे थे । राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये क्रांति कार्य में इन्होंने भी भाग लिया । ५ वर्ष हजारी बाग कारावास में रहे । वहाँ से मुक्त होने पर कोटा रहे और जागीर, निवास, लक्ष्मी से विहीन होते हुए भी देश और चारण–क्षत्रिय समाज की सेवा करते रहे । आप उच्च कोटि के विद्वान, कवि, एवं देश भक्त थे । समय समय पर आपकी रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में निकलती रहती रहीं । आपके निधन होने के बाद विद्यापीठ आपकी सारी रचना प्रकाशित करवाना चाहती थी और कुछ रचना एकत्रित भी करवाई । इसी बीच क्षात्र–धर्म ने अपना विशेषाङ्क निकाल उसमें उनकी सारी जीवनी–रचना प्रकाशित करवादी । अतः विद्यापीठ को अपना निश्चय त्यागना पड़ा । फिर भी प्रसङ्ग वश 'पूर्व आधुनिक राजस्थान', 'शोध पत्रिका' में इनके विषय में लिखा गया है और यहाँ उनके मर्सिया लिखे गये हैं ।

सोरठा

हो सांचो कविराज, गो जग तज गो लोक में ।
भौ सूनो सह आज, कवि कानन विण केहरी ॥ १ ॥

भावार्थः—वह वास्तव में कविराज था, जो संसार को त्याग कर स्वर्ग में चला गया। उस केसरी के बिना सारा कवि-कानन सूना हो गया।

कविवर तूझ विजोग हा, सालत है दिन-रात ।
हा केहर ! तव निधन थी, थई निधन सह जात ॥ २ ॥

भावार्थः—हे श्रेष्ठ कवि ! तेरा वियोग दिन-रात खटकता है। हे केसरीसिंह ! हाय ! आज तेरे निधन से सारी जाती श्री हीन-कान्ति-विहीन-होगई।

गिरी दसा महँ भी अजे, जिण पर करता नाज ।
कुल चारण रौ केहरी; रहियौ वह नहँ आज ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब कि अवनति की हालत में अब भी जिस पर गर्व किया जाता था, वही चारण कुल—केसरी आज (हमारे बीच) नहीं रहा।

पिक वाणी पिंगल तणी; छकिया ले कवि छाक ।
फटै सुणां केहर विना, धर धूजाणी धाक ॥ ४ ॥

भावार्थः—पिंगल की कोकिल वाणी को पान कर (आज के) कवि मस्त हो गये हैं। (ऐसी दशा में) उस केसरी के बिना (डींगल की) भू कंपित करने वाली गर्जना कहाँ सुनें ?

केहरी-भेद

वन केहर री हाक तो; पल में ही मिट जाय ।
(पण) अमर नाद कवि सिंघ री,जतन क्रोड़ नहँ जाय ॥ ५ ॥

भावार्थः—वनचर सिंह की गर्जना तो क्षण भर में विलीन हो जाती है। लेकिन कवि वर केसरीसिंह की अमर गर्जना करोड़ यत्न करने पर भी नष्ट नहीं होगी।

दोहे

चारण केहरि चल बसा, रहिगे नकली रूप।
जैसे वारिधि नाम के, राजत पय विन कूप ॥ ६ ॥

भावार्थः—केसरीसिंह तो चल बसा, अब तो (नाम मात्र) नकली स्वरूप रह गये हैं। जिस प्रकार विना पानी के कुओं के नाम भी कहीं २ लोग 'अमुक' सागर दे दिया करते हैं।

केहरि माहिं विलीन व्हे, केहरि रहहु सदैव।
(या) आओ तो यहिं आइयो, हरन प्रजा दुर दैव ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे केसरीसिंह ! या तो हमेशा के लिये ईश्वर में लीन हो कर रहना और या यदि जन्म लेना है तो जनता की दुर्दशा मिटाने के लिये यहीं (भारत में) आना।

छप्पय

धरा धाम अरु धन गयो, गई सह सुख री घड़ियां।
सुत प्रताप गो छोड़, पड़ण लगी दुख झड़ियां ॥
माणिक सी मणि-महल गई दधि-विपता डारे।
कुल रो दीप किसोर, गयो बृध बन्धु विसारे ॥
सह भांत देह प्रतिकूल व्हे, कीधो सदा रुआड़तो।
तोइ कृष्ण देह वालो कवी, केहर रह्यो दहाड़तो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जागीर, निवासस्थान और सम्पति सब चली गई। सुखानन्द के भूत कालीन वे सु दिन चले गये, वीरात्मजा प्रताप छोड़ कर चल बसा, (चहुँ ओर से दुःख) विपत्ति की वृष्टि होने लगी। 'माणिक' जैसी नारी कुल भूषण धर्म पत्नी भी दुःख सागर में छोड़ कर चली गई और वंश-उजागर किशोरसिंह जैसा सहोदर वृद्ध (भाई) भूल कर चला गया। अरे विधाता ने सब प्रकार से प्रतिकूल हो कर हमेशा के लिये उसे रोता हुआ कर दिया, लेकिन फिर भी वह दुबली पतली देह वाला कवि केसरीसिंह गर्जता ही रहा—अर्थात् कभी भी निर्बलता नहीं दिखाई।

दोहा

दिन दूणा निसि चौगुणा, सहिया कष्ट अनेक।
सहि न गई पण सिंघ थी, पराधीनता एक ॥ ९ ॥

भावार्थः—अनेक तरह के दिन दूने, रात चौगुने कष्ट सहन कर लिये, लेकिन (उस) केसरीसिंह से एकमात्र दासता (परतंत्रता) कभी सहन न की गई।

[रचयिताः- रूपसिंह बारहठ, बरवाड़ा]

ठाकुर केसरीसिंहजी बारहठ (कोटा)

दोहा

चारण, छत्र्यां रा चतुर, उपदेसक अणमोल।
बारठ "केहर" बीछड्यौ, तिण दुख रो नहँ तोल ॥ १ ॥

भावार्थः—चारण और क्षत्रियों को जो अमूल्य उपदेश करने वाला था, उस बारहठ केसरीसिंह के चिर-वियोग का जो हमें दुःख है उस की कोई सीमा नहीं है।

काव्य सुधा सींचै कवण, मृतकां कवण जिवाय ।
किशनावत कोटा तणौ, वारठ "केहर" नाँय ॥ २ ॥

भावार्थः—हा ! अब कौन काव्य सुधा का सिंचन करे और कौन उसके द्वारा मृतकों में जीवन संचार करे। हा ! वह कोटा-निवासी बारहठ किशनसिंहात्मज केसरीसिंह नहीं रहा।

राजथान रा रतन रौ, जीतां जतन न कीन ।
अब "केहर" कर सूं गयां, रोयां अरथ रती न ॥ ३ ॥

भावार्थः—हा ! उस राजस्थान के रत्न का जीवित अवस्था में हम कुछ भी संरक्षण न कर सकें। अब उस केसरीसिंह-रूपी महर्घ रत्न के हाथ से निकल जाने पर हम रोवें भी तो उस का क्या मूल्य है ?

चीता मिल अहड़ै चढै, (तो) मींढ़ा बकरां मार ।
"केहर" विण अब कुण करै, नवला गजां सिकार ॥ ४ ॥

भावार्थः—चीते यदि समूह बना कर भी आक्रमण करें तो मेंढे और बकरों पर ही मार पड़ सकती है। किन्तु सबल गजराजों को अब केसरी के बिना कौन शिकार करे।

सोरठा

फबती खारी फेट, बात लपेट चपेट दे ।
अवगुण री आखेट, करसी अब कुण "केहरी" ॥ १ ॥

भावार्थः—हे केसरी ! फबती हुई बात को बड़े ढंग से कह कर उसकी मार्मिक चोट के द्वारा हमारे अवगुणों की शिकार तेरे बिना अब कौन करेगा ?

दोहा

सेवा जुत जीवन सकल, इष्ट ध्यान तन त्याग ।
"केहर" बारठ सो कहुँक, पावत मोटे भाग ॥ १ ॥

भावार्थः—बारहट केशरीसिंह का जीवन सेवा-कार्य में व्यतीत हुआ। उसने शरीर को इष्ट का ध्यान करते हुए छोड़ा। (वास्तव में) वैसे व्यक्ति भाग्य से ही (एकाध) मिलते हैं।

"केहर" मरिकै अमर भौ, करिबौ रह्यौ न सेस ।
जिहिं को राजसथान जस, अंकित अचल हमेस ॥ २ ॥

भावार्थः -केशरीसिंह मर कर अमर होगया। उसने अपना कोई भी कार्य बाकी न रखा (जो २ सत्कार्य चाहे थे, वे सब पूरे कर डाले)। (यही कारण है कि) उसका यश आज भी राजस्थान में अंकित है।

"केहर" बारठ सा कनै, रखता राजा लोग ।
बिलसत सुख भुवि रा बिसद, भोगत सुरपुर भोग ॥ ३ ॥

भावार्थः—यदि राजा लोग बारहठ केसरीसिंह जैसों को अपने पास रखते तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग सुखों का उपभोग करते रहते।

"केहर" बारठ सा कनै, हर राजा हित होय ।
तो अहड़ौ राजां तणौ, लखे पतन नहँ लोय ॥ २ ॥

भावार्थः—प्रत्येक राजा के पास यदि केसरीसिंह बारहठ के जैसे दूरदर्शी व्यक्ति होते तो इस प्रकार लोग उनका पतन कभी नहीं देखते।

[रचयिताः- ठा० रामसिंह राठौड़, केलवा]

कविवर ! तूझ वियोग हा ! सालत है दिन रात ।
हा "केहरि" तव निधन से, निधन हुई सब जात ॥ १ ॥

भावार्थः— हे कविवर केशरीसिंह ! तेरा विछोह दिन रात खटकता रहता है। तेरा निधन क्या हुआ, मानो (समूची) चारण जाति का ही अवसान हो गया।

गिरी दशा में भी अजौं, जिहिं पर करते नाज़ ।
कुल चारण का "केसरी" रहा नहीं वह आज ॥ २ ॥

भावार्थः— पतितावस्था में भी यह चारण जाति (जिसे पाकर) नाज करती थी (अभिमान करती थी), वही (केशरीसिंह) आज दुनिया में नहीं रहा।

कै हरि मांहि विलीन व्है, "केहरि" रहहु सदैव ।
आओ तो यहिं आइयो, दलन देश-दुर्दैव ॥ ३ ॥

भावार्थः— हे बारहठ केशरसिंह ! या तो तुम हरि में लीन होकर ही रहना अथवा यदि जन्म लो तो, यहीं आकर इस देश के दुर्भाग्य को दूर करना।

पिक बयणी पिंगल तणी, छकिया ले कवि छाक ।
कठै सुणां विण "केहरी" धर धूजाणी धाक ॥ ४ ॥

भावार्थः—कवि लोग तो पिक बैनी पिंगल की रसीली मस्ती में मस्त हो रहे हैं, बिना "केसरी" के डिंगल का वह पृथ्वी को प्रकम्पित कर देने वाला सिंह नाद कहां सुन सकेंगे ?

कानन-केहरि हाक तो, पल में ही मिट जाय ।
अमर नाद कवि-केहरी, जातां जुगां न जाय ॥ ५ ॥

भावार्थः—कानन के केसरी की गर्जना तो क्षण भर में, हुई न हुई हो जाती है, परन्तु इस कवि "केसरी" का सिंहनाद तो युगों तक सुनाई देता रहेगा।

सौरठा

हो सांचौ कविराज, गौ जग तज गोलोक में ।
भौ सूनौ सह आज, कवि–कानन बिण "केहरी" ॥ १ ॥

भावार्थः—वह सच्चे अर्थों में कविराज था । हा ! वह संसार छोड़ कर गोलोकवासी हो गया । उस कवि "केसरी" के बिना सारा कवि–कानन सूना हो गया है ।

[रचयिताः– रुपसिंह बारहठ, बरवाड़ा]

ठा० खूमाणसिंह बारहठ, बरवाड़ा

दोहा

खरतर खरच रु खातरी, मठठ माण अरु पाण ।
सब ही ले ये साथ में, सुर पुर गयो खुमाण ॥ १ ॥

भावार्थः—स्पष्ट वकतृता, आतिथ्य सत्कार में खर्चा करना, स्व गौरव, स्वाभिमान और तेजस्विता ये सभी साथ ले खुमाणसिंह स्वर्ग सिधार गये ।

[रचयिताः– ठा० डूङ्गरसिंह भाटी, मोही]

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता गौरीशङ्कर ओझा

सोरठा

लीधौ हर लूटेह, भारत इतिहासी भवन ।
ओझा विन ऊठेह, हिंदवां रै ज्वाला हियै ॥ १ ॥

भावार्थः– शंकर ने भारत के ऐतिहासिक भवन को ही मानो लूट लिया । ओझा के बिना हिंदुओं के हृदयों में शोक की ज्वालायें उठ रही हैं ।

ओझा भल ओप्योह, हीयै भारत हार ज्यूं ।
करतावर को प्योह, हार हर्यो इतिहास रो ॥ २ ॥

भावार्थः—भारत के कंठहार के समान ओझा देश में बहुत ही शोभायमान हुवा था। किन्तु प्रभु का कोप हुवा और उसने उस ऐतिहासिक हार को हरण कर लिया।

जणही नहँ जणणीह, संकर गौरी द्विज जिसा।
जस सारै नर-जीह, ओझौ सह भारत अमर ॥ ३ ॥

भावार्थः—द्विजवर्य गौरीशंकर के समान शायद ही कोई जननी किसी को जन्म देगी। उसका यश सब मनुष्यों की जिव्हा पर है—ओझा भारत में अमर है।

मरसी वे जग मांय, करतब जे नहँ कर सक्या।
मुख नर नर रै मांय, ओझौ इतिहासी अमर ॥ ४ ॥

भावार्थः—संसार में मरेंगे वही जो कुछ भी कर्तव्य पालन नहीं कर सके। प्रत्येक मानव की जिव्हा पर होने से ओझा तो मर कर भी अमर है।

भारत देस अभार, तो सूं हीराचँद तणा।
सुगँध करी संसार, अमर लता इतिहास री ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे हीराचंद के पुत्र! तैंने संसार में इतिहास रूपी अमरलता को सुगन्धित कर दी। भारत देश तेरा आभारी है।

[रचयिता:— सांवलदान आशिया]

महात्मा गांधी जी

कवित्त

त्यागे तन गोली वार यही विधना के अंक,
कलँक पराधीनता निज कर धो गयो।

आडे अँगरेज़ों के ठाडे हो विराट रूप,
काढे निज देश तें स्वराज दीप जो गयौ।
स्वारथ को त्यागी अनुरागी वो स्वतंत्रता को,
भारत को पारथ वो गारत क्यों हो गयौ।
विविध विचार बांधि वर्णत है लाल आज,
हाय ! काल आंधी मांझ, गांधी रत्न खो गयौ ॥ १ ॥

करुणा निधान यही विनय हमारी आज,
सदा सुखकारी नेक श्रवण सु दीजिये।
आवो अरे आवो औ पढ़ावो हमें शान्ति पाठ,
देय के भुलावो हमें, छोड़ मत दीजिये।
देश ये तुम्हारो अहो दीन दुखी भारी भयौ,
और न सहागे यों किनारो मत कीजिये।
गांधी अवतार इस भारत मँझार नाथ !
ऐरे करतार एक बार फिर लीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—विधाता ने उस भाग्य में यही लिखा था कि वे गोली खा कर शरीर त्याग करे (अमर शहीद हो) देश का परतंत्रता रूपी कलङ्क अपने हाथ से धोकर चला गया। अंग्रेजों के सामने विराट स्वरूप बन कर खड़ा हो गया और उन्हें अपने देश से बिदा कर स्वराज्य का दीपक प्रज्वलित कर गया।

स्वार्थ का त्यागी, स्वतंत्रता का अनुरागी हे भारत के पार्थ क्यों गायब हो गये। तरह तरह के विचार कर के लालसिंह आज वर्णन करता है कि हाय! कराल काल के झंझावात में गाँधी जैसा रत्न खो गया।

हे दया सिंधु ! आज हमारी यही प्रार्थना है कि हमेशा सुख देने वाले थोड़ा हमारी ओर कान लगाकर सुनिये और आइये. अरे पधारिये और हमें शान्ति पाठ पढ़ाइये, भुलावे में डाल कर हमें छोड़िये मत। हाय ! तुम्हारा यह भारत देश अनाथ हो कर महा दुःखी हो रहा है और कोई आधार नहीं है, ऐसी दशा में इस तरह किनारा मत काटिये (दूर मत जाइये)। इस भारत के बीच हे नाथ ! हे सर्जनहार ! हे गाँधी ! एक बार फिर अवतार लीजिये ।

[रचयिताः— लालसिंह बारहठ]

राष्ट्र पिता गांधी

कवित्त

हिंद को आधार अरु सुधार राज तंत्र को,
सुसार नीति धर्म को हाय, अब ऊठि गो।
निर्धन को धन्न अरु भूखन को अन्न मानो,
सज्जन उछाह मन हाय ! सब खूटिगो।

कामनी स्वतंत्रता को भामिनि अनाथ जेम,
यामिनी अराजक में हाथ; चीर लूटिगो।
मोहन के निधन तें पतन देश भारत को,
मुसलमान हिंदुन भाग्य हाय फूटिगो ॥ १ ॥

संपत्ति अनाथन की सुमति सुनाथन की,
नीति सनातन की जु आज हाय ऊठिगी।
महिमा सु धर्म की रु निंदा अधर्म की जु,
भृत्सना कुकर्म की सु हाय सब खूटिगी।

विशेषता अहिंसा की हिंसा की अशेषता जु,
घृणा प्रतिहिंसा की सु हाय अब छूटिगी।
बापू आतम शान्ति तें अशान्ति हुई भारत में,
शान्ति रस-सागर की पाज हाय फूटिगी ॥ २ ॥

दोहा

नहरू अरु सरदार तुम, करो जु तुम्हें सुहाय।
गाँधी रहा न जगत में, का सौं कहिबे जाय ॥ ३ ॥

भावार्थः—भारत का सहारा, राजतंत्र का सुधारक, नीति धर्म का श्रेष्ठ सार स्वरूप हाय आज उठ गया। निर्धनों का धन, भूखों का अन्न (दाता) सज्जनों का उत्साह आज मानो विलीन हो गया। स्वतंत्रता रूपी (नव वधु) स्त्री का अनाथ बाला की तरह आराजक रात्रि में हाथ का सौभाग्य-चीर लूट लिया गया और मुसलमान व हिन्दुओं का भाग्य फूट गया।

अनाथ-गरीबों-की सम्पत्ति, वैभवशालियों की सम्मति सनातन धर्म की नीति हाय! आज उठ गई। सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा, अधर्म की निंदा, कुकर्मों की फटकार आज सब समाप्त हो गई। जो अहिंसा की विशेषता, हिंसा की निःस्सारता, प्रतिहिंसा की नफ़रत सब आज छूट गई। बापू की आत्म-शान्ति से भारत के शांति-रस-सिंधु का बांध हाय आज फूट गया!

हे (जवाहरलाल) नेहरू और सरदार (वल्लभ भाई पटेल) तुम्हें जो अच्छा लगे वही करिये। आज संसार में गाँधी (बापू) नहीं हैं किस से जाकर शिकायत करें।

[रचयिताः— ठा० डूँगरसिंह भाटी]

विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर

(वि० १९९८ श्रावण शु० १५)

कवित्त

आज जगनाशी कलाकार कई देखे पर,
अमर कलाकृति वो हिंद की बताइगो।
भारत की रीति नीति मिटाने लगे थे अन्य,
उसे कलिकाल में आ फिर से बचाइगो।
भारत था जगद्गुरु और भी रहेगा यही,
मंथन रच काल में निश्चय दिखाइगो।
हम तें निभै ना निभै हाथ जगनाथ है पै,
भारत की गुरुता को गुरु तो निभाइगो ॥१॥

मिलत अनेकानेक दमड़ी के दास कवि,
पटुता दिखाते मिलें बातन के बल में।
ठकुर सुहाती खूब करन अनेक मिलें,
मिलें बहु फूले हुए निज की अकल में।
कायर को पार्थ और कृपण को कर्ण, बलि,
बनाते मिले हैं लाखों एक ही तो पल में।
(किंतु)काव्य गुणी कम मिलें उनमें भी रवि जैसो,
मिलिबो कठिन आज सारे भू-मंडल में ॥२॥

मान्यो कलिकाल बीच वेदव्यास जाहि जग,
कविन अनाथ करि 'नाथ' हा! सिधाइगो।

मानवता मूर्ति और गुरुन मुकुट मणि,
विश्व हिय ठाकुर हा! विश्व तें बिलाइगो।
नैया महि मंडल की परी मझ धार तब,
नैया को खेवैया छोरि विभु में समाइगो।
भारत को लाल हाय! करि के बिहाल सबैं,
वंदनीय 'विश्व' अस्ताचल धाइगो ॥३॥

वर्तमान युग की विभीषिका को नग्न नृत्य,
देखि खिन्न होय 'गुरु' जग ही तें रूठिगो।
सत्य, शिव, सुन्दर, साहित्य आज सूनो कर,
हाय कलानिधि आज हम तें बिछूटिगो।
विश्व प्रेम ही को आज सरोवर रीतो है रु,
विश्व भारती को आज मेरु-दंड टूटिगो।
जानिगो जहान आज 'रवि' के पयान कीने,
पुरातन हिंद को नमूनो आज ऊठिगो ॥४॥

दोहा

गिरा वज्र माँहिंद पर, दुख बंधन बिच डार।
रक्षा-बंधन दिन रवी, गो भव-बध निवार ॥ ५ ॥
स्वप्न या कि परतच्छ यह, या पवि को है पात।
या गिरि को आघात या, सच रवि को तन-पात ॥ ६ ॥

सोरठा

हरि कीधो की हाय, हिन्द रवी हर ने हमैं।
इल हित इक अध्याय, आफत रो जोड्यो अधक ॥ ७ ॥

पिङ्गल

पूजत सब रवि उदय है, अस्त न पूजत कोय ।
कवि रवि अस्त हु पूजियत, यही अचंभो मोय ॥ ८ ॥

भावार्थः—आज संसार के विनाशकारी (वैज्ञानिक) कलाकार तो कई देखे किन्तु भारत की अमर कला का नमूना वह (रविन्द्र ही) बता गया । भारत की परम्परा, संस्कृति अन्य लोग नष्ट करने लगे थे किन्तु इस कलियुग में भी ठाकुर ने आकर उसे फिर से बचा लिया । भारत पहले जगत–गुरु था और भविष्य में भी गुरु ही रहेगा । यह इस मंथन काल में भी निश्चित रूप से वह (रविन्द्र) दिखा गया । भारत के बड़प्पन को हम लोग निभा सकेंगे या नहीं यह तो ईश्वर कृपा पर निर्भर है लेकिन गुरुवर ठाकुर तो उसे पूरी तरह निभा गया ।

स्वार्थ के दास तो कई कवि मिलते हैं, कई बातूनी शक्ति में ही अपनी चतुरता दिखाते हैं, चित-सुहाती बातें करने वाले (खुशामद खोर) भी कितने ही मिल जाते है । अपनी अक्ल के मद में चूर हुए भी बहुतेरे पाये जाते है; भीरु को वीर अर्जुन और कंजूस को कर्ण, बलि कहने वालों की भी कमी नहीं है बल्कि लाखों मिल जाते हैं । परन्तु सच्चे साहित्य के ग्राहक विरले ही मिलते हैं और उनमें भी कविंद्र रविन्द्र जैसे का मिलना तो समस्त संसार में भी दुर्लभ है ।

आज इस कलियुग में भी जिसे सारे संसार ने वेदव्यास के समान माना, वह कवियों को अनाथ कर (रविन्द्र) नाथ चला गया । मानवता का अवतार गुरुओं का मुकुटमणि, विश्व का हृदय–स्वामी संसार से लुप्त हो गया । सारे संसार की नैया जब मझधार (संकट) में पड़ी है (और इस समय जिसकी परम आवश्यकता है वही) तब नाव के खेवन हार उसे छोड़ कर परमात्मा में विलीन हो गया । विश्व वन्दनीय भारत का सपूत रविन्द्रनाथ सब को व्याकुल कर अस्ताचल की और दौड़ गया ॥

विश्व कवि सम्राट गुरु रविन्द्र इस समय की बर्बरता का नग्न ताण्डव देख संसार से रूठ कर चला गया। सच्चे (सत्य शिवं सुन्दरं) साहित्य को सूना करके हाय वह कला का भंडार हम से बिछुड़ गया। संसार का प्रेम सागर आज रिक्त हो गया और विश्व-भारती की रीढ़ टूट गई। रविन्द्रनाथ के जाने से आज संसार भर जान गया कि प्राचीन भारत का गौरवमय प्रतीक आज उठ गया।

भारत माँ के ऊपर वज्र प्रहार कर, दुःखागार में डाल कर रक्षा बंधन के दिन ही ठाकुर रविन्द्रनाथ संसार का बंधन तोड़ कर चला गया।

रविन्द्र बाबू का विनष्ट होना केवल सपना ही है अथवा वास्तविक सत्य है। आकाश से वज्र या पहाड़ के समान आघात आज हृदय पर हुआ है।

हाय ! हिंदू सूर्य (रविन्द्र) को हरण कर के हे भगवान् क्या किया ? पृथ्वी वैसे ही आपत्ति ग्रस्त है, उसमें आपने यह एक अध्याय और जोड़ दिया।

सारी दुनियाँ उदय होते हुए सूर्य की पूजा करती है अस्त, होते हुए को कोई नहीं पूछता। लेकिन कविवर रविन्द्रनाथ की तो अस्त (मृत्यु) होने पर भी पूजा हो रही है; यह मेरे लिये आश्चर्य है।

[रचयिताः- रूपसिंह बारहठ]

लोकमान्य तिलक

कवित्त

द्विज वंश जन्म लेके पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर।
झंडा कर लीनो भान-भारत उत्थान को ॥
तजे अभिराम सुख भोगे सब कष्ट तो हू-
तनिक न चूके आप ध्यान स्वाभिमान को ॥

तिलक आर्य पूतन के, तिलक सराहौं का ।
दीनो विश्व वासिन को कोष कर्म ज्ञान को ॥
यौवन तें अंत लौं सहे दुःख असहनीय–
तजी निज जान तोहू जान दी न आन को ॥ १ ॥

दोहा

हाय ! तिलक भारत तनय; तिलक गंगधर बाल ।
सुरग तिहारे गमन तें; है हमरो जो हाल ॥ २ ॥

सुनै कौन जासों कहैं; हाय ! विरह की बात ।
आवत तव गुन याद जब; रोवत सब अध रात ॥ ३ ॥

सुनै कौन जातें कहैं; तव वियोग की बातें ।
नासक तूझ वियोग को; सृष्टी पें न लखात ॥ ४ ॥

तात त्रिलोकी तें विनय; है मम वारम्बार ।
तनय हिंद को तिलक से; दीजे सरजन हार ॥ ५ ॥

भावार्थः—ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर (गारत हुए) भारत के उत्थान का झण्डा अपने हाथ में लिया। सारे वैभव- विलास को ठुकरा कर सब प्रकार के कष्ट–यातनाएँ सहन करली परन्तु अपने स्वाभिमान–स्व–गौरव का ध्यान रंच मात्र नहीं भूले। आर्य–संतति के तिलक हे (भगवान) तिलक ! आप की क्या तारीफ़ श्लाघा की जाय आपने (विलास या वैराग्य में फँसे हुए) विश्व मानव को (निष्काम) कर्मयोग ज्ञान का खजाना बताया। युवावस्था से अंतिम घड़ियों तक असह्य वेदनाएँ सहन करलीं। अपनी जान की बाज़ी लगादी परन्तु अपनी टेक को नहीं त्यागी ।

हे भारत संतति के तिलक, बाल गंगाधर तिलक! आपके स्वर्गारोहण से हमारा जो हाल है, वह किस से कहें?

कौन सुनने वाला है, जिससे तुम्हारे वियोग (दुःख) की बात कही जाय! संसार में तुम्हारे वियोग को मिटाने वाला दिखाई नहीं देता।

अब तो मेरी त्रिलोकी नाथ-प्रभु से बार बार यही प्रार्थना है कि हे सर्जन हार! भारत माता को भगवान तिलक जैसे सुपुत्र फिर देने की दया करना।

[रचयिताः- रुपसिंह बारहठ]

कविराज चंडीदान (कोटा)

सोरठा

ओलतॅ कव्याँ अछेह, हो पारस संकर हरो।
आथमियौ ऊगेह, चूंडौ सूरज चारणां॥ १॥

गीत

सुणे श्रवण हहकार छत्रधर सरब सोचियौ।
क्रूर भणकार भौ चहूँकानी।
सुकवि हंसा तणौ मानसर सूकगौ।
देवपुर सधातां चंड दानी॥ १॥

साख सौबीस सणगार भाना सुतन।
गयौ रवि अस्त ह्वै उदैगिर सूं॥
प्रभूगन भई सुधणी सुरग पूगतां।
कव्यां चिंतामणी गई कर सूं॥ २॥

बीसरां किसूं ब्रनभांण लालाबिलँद।
झुरत चख याद वा करत झांका॥

अमरपुर वास महियारा करतां अबै ।
रतन खुल पलां सूं गयौ रांका ॥ ३ ॥

गुणनिधी खूटगो पारख गुणां रो ।
चंड धर अमर नेवाण चांढयो ॥
दुवा संकरस वैकुंठ जातां सदन ।
पातवां कलपव्रछ टूट पड़ियो ॥ ४ ॥

भावार्थः—उस पारस सदृश शकरदान के पोते की कवियों को अत्यन्त ही याद आती है । हा ! वह चारणों का सूर्य उदय होकर अस्त हो गया ।

उस दानी चंडीदान के अमरपुर (स्वर्ग) प्रस्थान कर जाने से चारों ओर क्रूर करुणध्वनि हो गई । हाहाकार का शब्द सुनते ही सब राजा लोग शोक निमग्न हो गये । हा ! सुकवि-हँसों का वह मानसरोवर सूख गया । वह भवानीदान का पुत्र चारणों की एक सौ बीस शाखाओं का शृंगार और सूर्य के समान था । वह कुल रवि आज अस्त हो गया । उस उदार स्वामी के स्वर्ग प्रस्थान से कवियों के हाथ से मानो चिंतामणि छूट पड़ी है । हे चारण वर्ण के सूर्य ! तुम्हें कैसे भूल सकते हैं । तुम्हारी सूरत याद कर के आंखों से आँसू बह रहे हैं । हा ! उस महियारिया के अमरपुर निवास से रंकों की गांठ से अमूल्य रत्न ही खुल पड़ा है । गुण-पारखी चंडीदान के स्वर्गारोहण से मानो गुणों का खजाना ही खाली हो गया । उस दूसरे शंकरदान के वैकुण्ठधाम चले जाने से सुपात्रों का कल्प वृक्ष ही मानों टूट पड़ा ।

[रचयिता:- मोतीसर सूरजमल]

महाराज चतुर्सिंह

कबित्त

आनंद को भवन सुख शान्ति को सदन वह–
शान्त रस सागर को बंध हाय टूटिगो।
प्रेम को पुजारी सहचारी हरि दासन को,
ज्ञान को व्योपारी हाय जान उठिगो।
प्रजा प्रति पारक धारक सद धर्म धीर,
क्षत्रिन सुधारक हाय ! हम तें बिछूटिगो।
चातुर की मृत्यु सुन जान्यो यह निश्चय ही,
मेदपाट भाषा हु को भाग्य हाय फूटिगो ॥ १ ॥

भावार्थः—सुख, शांति और आनंद का वह धाम था। हाय आज शान्त-रस सिंधु का बांध टूट गया ! प्रेम का पुजारी, हरिभक्तों का सहयोगी और ज्ञान का व्योपारी हाय ! न जाने किस ओर उठ चला ! प्रजा का प्रति पालन करने वाला, सत्य धर्म को धारण-ग्रहण करने वाला, और क्षत्रिय समाज का सुधारक भला हमसे बिछुड़ गया। (महाराज) चतुरसिंहजी का स्वर्गवास सुन कर हमने तो निश्चय ही यह जान लिया कि आज मेदपाट की (मेवाड़ी) भाषा का भाग्य फूट गया।

[रचयिताः–डूंगरसिंह भाटी, मोही]

दोहा

कृष्ण कठिन गीता कही, समभयो अर्जुन एक॥
चित दे सुणता चतुर सूं, अरजुन बनत अनेक ॥ १ ॥

भावार्थः—भगवान श्री कृष्ण ने जो कठिन गीता कही उसे एक अर्जुन समझ सका। लेकिन, इसे ही ध्यान पूर्वक चतुरसिंहजी से सुनकर अनेक अर्जुन बन जाते॥

[रचयिताः—उमाशंकर द्विवेदी, उदयपुर,]

जसवन्त राव, होलकर

दोहा

हिंदवाणां हलका थयां, तुरकां रह्यां न तंत।
अंगरेजां उच्छब कियां, जो खमियां जसवन्त॥ १ ॥

भावार्थः—हा ! जसवन्तराव होल्कर क्या चल बसा, हिन्दू निर्बल होगये मुसलमानों में तंत ही नहीं रह गया और अंगरेज तो हर्ष पुलकित हो उत्सव मनाने लग गये।

छप्पय

धरा सेस धड़ हड़े, पड़े भंगाण प्रथम्मी।
मेर गयण डगमगे, नड़े हिंदवाण अनम्मी॥
च्यार चक्क भंचक्क, होय दुनियांण हंकारू।
पातसाह नूं रह्या, दिल्ली छोडे होय धारू॥
औरंग रंग कीधा इसा, थानक देव उथापिया।
तो विना जसा दजसिंह तणा, सोह गयातन संकिया॥१॥

भावार्थः—पृथ्वी ही क्या शेषनाग तक प्रकम्पित है, मेरु पर्वत हिल उठा है, संसार में हाहाकार है, आकाश क्षुब्ध है, चारों दिशायें भौंचक्की हैं ! हिन्दुस्तान में जो अनम्र थे वे नतमस्तक हो गये हैं,

हुओ धरा हैं कंप, साह दळ हुआ सचेता ।
हुए राह हेकटा, रूक हौय खित्रवट रीता ॥
ऊथल पाथल होय, होय सिर डंड हजारां ।
होय जीण हैं वरां, होय प्रथमाद पुकारां ॥
हर मंदिर पाड़ पाधर हुई,
दहल संक खाधी दुवां ।
तो विना जसा गजसिंघ तणा,
हुई हलचल हिंदवां ॥ ५ ॥

भावार्थः—पृथ्वी पर हाकाकार हो रहा है, बादशाह की फौजों में चेतना आगई है, क्षत्रियों का क्षात्रत्व निकल रहा है, घोर अस्त-व्यस्तता छा रही है, हजारों लोगों पर दण्ड हो रहा है, सर्वत्र त्राहि त्राहि की आर्तध्वनि हो रही है, हर मन्दिर गिराये जा रहे हैं और सब पर दहशत गालिब है। हे गजसिंह के जसवन्त ! तेरे विना हिन्दुओं में दुःखद हलचल मच गई है।

तो ऊभां सुरताण, वदे नहँ खाग वजायौ ।
तो ऊभां सुरताण, आप मुरधर नहँ आयौ ॥
तो ऊभां सुरताण, रोळ पाड़ी नहँ राणे ।
तो ऊभां सुरताण, हद राखी हिंदवाणै ॥
जग जेट थंभ ऊभां जसे,
औरँग दळ वळ आहटे ।
गजसिंघ सुतन विव्नां गढां,
गाढ़ मयंदां आहटै ॥ ६ ॥

भावार्थः—तेरी उपस्थिति में बादशाह स्वयं कभी मारवाड़ में नहीं आया और न कभी तलवार चलाई। तेरी उपस्थिति में वह कभी महाराणा के अभिमुख नहीं हुआ और उसने हिन्दुओं की मर्यादा को बराबर अक्षुण्ण रक्खा। संसार का मुख्य स्तंभ जसवन्तसिंह जब तक विद्यमान रहा, औरंगजेब की सेनाओं का समस्त बल व्यर्थ ही होता रहा। हा! उस गजसिंह के पुत्र की मृत्यु से गढ़ों में निवास करने वाले पुरुष सिंहों का पौरुष भी हीन हो गया है।

[रचयिताः- अज्ञात]

महाराज जसवन्तसिंह, जोधपुर

दोहा

उगणी सैं बावन उरज, आठम कवि बद ईस।
च्यार बज्यां जसवँत चल्यौ, पूरा मिट पैंतीस ॥१॥

भावार्थः—संवत् उन्नीसौ बावन के··· बदि अष्टमी को चार बज कर पैंतीस मिनट गये, कवि के स्वामी जसवन्तसिंह का देहावसान हो गया।

तपधारी तखनेस रो, सुत माझी सुभियाण।
धरा छूंत मुरधर धणी, पूगौ सुरग पयाण ॥२॥

भावार्थः—हा। प्रतापी तख्तसिंह का वह चतुर सुपुत्र मरुधरपति पृथ्वी से प्रयाण कर स्वर्ग-सिधार गया।

जसधारी जसवंत नृप, हो खाविंद हिंदवांण।
अनमी मुरधर रै अदिन, ज़ोखमियौ घण जान ॥३॥

भावार्थः—यशस्वी महाराज जसवन्तसिंह हिन्दुस्थान का स्वामी था। हा! मारवाड़ के दुर्भाग्य से वह अनम्र एवं बहुज्ञ स्वामी परलोक-वासी हो गया ॥४॥

जीव दियौ जसवंत जद, चमके लोक अचंभ।
थिर पर राजसथान रौ, थम गिर्‌यौ रणथम ॥४॥

भावार्थः—जब जसवंतसिंह का प्राण प्रयाण हुआ तो शोकातिरेक से चौंक उठे,—हा! वह रणस्तंभ जो राजस्थान का मुख्य स्तंभ था, पृथ्वी पर गिर पड़ा!

हा जसवँत! हकबक हुवौ, अकबक लोक अजाण।
महपत पोतौ मान रौ, पड़ियौ गुण अप्रमाण ॥५॥

भावार्थः—हाय! बेखबर लोग यह जानते ही हक्केबक्के रह गये कि महाराजा मानसिंह का असीम गुणसम्पन्न पोता यशवन्तसिंह स्वर्गवासी हो गया।

हाणी नृप जातां हुई, लेखण सकै न लेख।
पाटोधर धर पौढियौ, अड़्यो लेख अलेख ॥६॥

भावार्थः—महाराजा के स्वर्गवास से जो हानि हुई है, उसे लिखने में लेखनी असमर्थ है। सिंहासन का स्वामी भूशायी हो। गया हा! विधाता! तेरा लेख!

जत्र तत्र फब तौ जसौ, लियां खत्रवट लाज।
छत्र हुतौ छत्रधारियां, अत्र ढयौ दिन आज ॥७॥

भावार्थः—वह जसवन्तसिंह राजपूती बाने की लाज रखते हुए जहां कहीं होता, छत्रधारियों के छत्र समान शोभित होता था। हा! वह छत्र आज भंग हो गया।

प्राण पठे जसवंत प्रभु, अठै नहीं अवसेस।
जठै तठै जोवे जगत, कठै गयौ कमधेस ॥८॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह ने अपने प्राण प्रभु के पास भेज दिये। वे अब यहां नहीं हैं। संसार जहां तहां खोज रहा है—वह कवंधों (राठौड़ों) का स्वामी कहां चला गया ?

साथ झुरै जसवंत सह, दुखी अनाथ दयाल।
हाथ न आवै हे हरी, कमँधां नाथ कृपाल ॥९॥

भावार्थः—सारा समाज दुःखी अनाथ बना हुआ रुदन कर रहा है—हे हरि ! क्या वह कृपालु कवंधों का स्वामी हमें न मिलेगा।

तो समान तोलूं तुला, खाँवँद जसवँत खैंग।
तेज लेण जावत नृपत, सूरज मण्डल मैंग ॥१०॥

भावार्थः—हे स्वामी जसवन्तसिंह ! तेरे घोड़ों की ही तुलना यदि दूसरों से करूं तो अन्य सब नृपतिगण तेज प्राप्ति के लिये सूर्य मण्डल में चले जायँ। तेरी तेजस्विता की तो फिर किससे कैसे तुलना की जाय ?

एकै चेलै सब अधिप, एकै चेलै आप।
तोड़ बरोबर नहँ तुलै, जसवँत तो जस जाप ॥११॥

भावार्थः—हे जसवन्तसिंह ! एक पलड़े में तेरा यश और एक में सारे राजाओं का यश रक्खा जाय तो भी वह तेरे यश के बराबर नहीं होगा।

हल कोड़ौ ऊंचौ हुवै, सुवह चिरमियौ साथ।
नृप जसवँत नीचौ निसै, सोने ज्यूं समराथ ॥१२॥

भावार्थः—गुंजा के समान हलका राज-समाज अपनी हेकड़ी में, ऊंचा ऊंचा बना फिरता है, किन्तु समर्थ महाराजा जसवंतसिंह स्वर्ण के समान नम्र हुआ रहता है।

जस सुण औ जसवंत रौ, होवै अचरज हिंद ।
ऊंचा गुण सो क्यूं अहो, नीचौ जाय नरिंद ॥१३॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह का सुयश सुन कर सारे हिंद में आश्चर्य होता है। किन्तु इसमें अचरज की बात ही क्या है! उस के सब ही गुण बहुत ऊँचे हैं, वह निम्न कोटि की ओर जा ही कैसे सकता है?

जसवँत नृप रौ जगत में, एको नाम उदार ।
सुदतारां रौ सेहरौ, दातारां दातार ॥१४॥

भावार्थः—एक जसवन्त नरपति का नाम ही जगत् में विख्यात है। वह सुदातार शिरोमणि दातारों का भी दातार था।

तिम लेतां लोभी तणौ, सानँद हुवै सरीर ।
जिम देतां जसवँत रौ, हौ मन अत हमगीर ॥१५॥

भावार्थः—जैसे लोभी का चित्त द्रव्य प्राप्ति से आनंदित हो जाता है, वैसे ही जसवन्तसिंह का चित्त दान देते समय हर्ष-पुलकित हो जाता था!

चित में जैड़ी चुगल रै, चुगली वालौ चाय ।
यूं आती जसवंत उर, देवण वाली दाय ॥१६॥

भावार्थः—जैसा चुगल खोर को चुगली करने का चाव होता है वैसा ही जसवन्तसिंह को दान देने का चाव रहा करता था।

जग मांही जसवन्त रौ, सीधौ हुतौ सुभाव ।
दिल ऊजल नहँ बदलतौ, रंक मिलौ वा राव ॥१७॥

भावार्थः - जगत् में जसवन्तसिंह का स्वभाव बड़ा ही सरल था। उसके निर्मल हृदय में कोई अन्तर नहीं आता था—भले ही वह राजा से मिले या रंक से!

यूं कै तौ जसवँत अधिप, विमल विचार विचार।
इल सबलां रै आसरै, निबलौड़ा नर नार ॥१८॥

भावार्थः—महाराजा जसवन्तसिंह अपने विमल विचार को सोच समझ कर यों व्यक्त किया करता था कि यह पृथ्वी तो शक्ति शाली पुरुषों के सहारे ही रहती है। निर्बल पुरुष तो नारी के समान ही समझे जाने चाहिये।

जसवँत कोई जीव नैं, कदे न कह्यौ कुपात्र।
तैं समझ्यौ तखतेस तण, सनमुख हुवौ सुपात्र ॥१९॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह ने कभी किसी प्राणी को कुपात्र नहीं समझा। उस ने तो जो भी उस के सामने आशा कर के आ गया उसे सुपात्र ही समझा।

जसवँत कै तौ जीव नै,-पोखण में नहिं पाप।
काफ़र नहिं देणौ कहै, वेइज काफ़र आप ॥२०॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह कहता था कि किसी भी प्राणी के पोषण में पाप नहीं है।

जसवँत कैतौ जाच नैं, ले जावौ सब लोग।
उत्तम मद्धम अधम रौ, राख्यौ एक न रोग ॥२१॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह कहा करता था कि मुझ से याचना कर के सभी लोग अपनी इच्छा पूर्ति करें। मैंने अपने यहाँ उत्तम, मध्यम, अधम के भेद की बीमारी ही नहीं रक्खी है।

जसवँत गो इण जगत नै, वेला पुल बतलाय ।
सो वेला पुल होय सुभ, जाचक विमुख न जाय ॥२२॥

भावार्थः—संसार को एक बड़ा अच्छा मुहूर्त बतला कर जसवन्तसिंह चला गया कि वही समय सर्वोत्तम, शुभ है कि अपने घर से याचक विमुख (निराश) न जाय ।

जसवँत आवण जाणतौ, दुखियौ पैलां द्वार ।
सुखियौ कदे न संचरै, बीजां मांगण बार ॥२३॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह यह खूब जानता था कि दुःखी मनुष्य ही दूसरे के घर आशा लेकर जाता है। कोई भी सुखी मानव दूसरे के दरवाजे पर हाथ पसारने नहीं जाता—और, दुखी का दुःख दूर करने के समान और बड़ा पुण्य क्या हो सकता है ?

बार बणायर बैठतौ, मिजलस मिजलस मोड़ ।
पड़दे में नहिं पैठतौ, दूजां ज्यूं घुस दौड़ ॥२४॥

भावार्थः—वह मजलिसी महाराजा सदा ही खुले आम अपनी मजलिस बना कर बैठा करता था। दूसरों के समान वह कभी भी दौड़ कर पर्दे में दाखिल नहीं हो जाता था ।

बैतोड़ आयौ बारलौ, मारवाड़ रै मांय ।
जसवँत भूप जुहारियौ, कसर न राखी काय ॥२५॥

भावार्थः—कोई भी बाहर का व्यक्ति राह चलता भी मारवाड़ में आजाता और उस की भेंट जसवन्तसिंह से हो जाती तो उस व्यक्ति के लिये वह किसी प्रकार की कमी नहीं रहने देता था ।

मोटा छोटा मुसदियां, बुलवातौ दरबार ।
जसवँत खातर जीवका, सारां लेतौ सार ॥२६॥

भावार्थः—अपने दरबार में जसवन्तसिंह सब छोटे बड़े मुत्सद्दियों को बुलाता था और यथा योग्य सम्मान एवं जीविका द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया करता था।

काम सूंप कीनो नहीं, दोस विना कोइ दूर।
कियौ गुनो तोइ माफ किय, हा जसवन्त हजूर ॥२७॥

भावार्थः—तुमने काम सिपुर्द कर किसी को बिना अपराध उस काम से अलग नहीं किया। इतना ही क्यों, किसी ने यदि कोई गुनाह भी किया तो तुमने उसे क्षमा कर दिया। हा जसवन्त !

धिनो धिनो जसवँत धणी, नृप कीन्हौ तैंनेह।
जिकां निभाया जीवतां, छिनक न दीनौ छेह ॥२८॥

भावार्थः—स्वामी जसवन्तसिंह ! तू धन्य है ! जिससे तूने एक वार प्रेम कर लिया, उसे जीवन भर निभाया—क्षण भर भी दूर नहीं किया।

एक न कदे उतारियौ, दिल सूं मरजीदान।
तैं राखी तखतेस तण, अपणावे री आन ॥२६॥

भावार्थः—हे तख्तसिंह के आत्मज ! अपने एक भी कृपा पात्र को तूने अपने दिल से कभी नहीं उतारा। जिस को तूने अपना लिया, उस की आन बराबर बनाये रक्खी।

हाडौती हिलमिल हुई, मेल कियौ मेवाड़।
घर जसवँत रै घुम्रँड नै, ढूकी धर ढूंढाड़ ॥३०॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह का ऐसा प्रेम व्यवहार था कि हाड़ौती, मेवाड़ और ढूंढाड़ के राजा उससे हिल मिल गये थे।

जग जामी जसवन्त रौ, हुवौ बड़ौ दै हेत।
प्रीत वधावण परसपर, सुपहां किया सचेत ॥३१॥

भावार्थः—जसवन्तसिंह ने सब राजाओं को परस्पर प्रेम बढ़ाने के लिये प्रोत्साहित किया था और इसी आशय से उसने बड़ौदा नरेश से स्नेह संबंध जोड़ा था।

कदे न राखी कुरबरी, करड़ाई सूं कांण ।
सारां घर सो समझियौ, जसवँत नै जोधाण ॥३२॥

भावार्थः—अपनी प्रतिष्ठा के निर्वाह के लिये उसने कभी कठोरता का व्यवहार नहीं किया। इसी लिये तो जसवंत सिंह और जोधपुर को सब राजाओं ने अपना घर समझ लिया था।

बडभागी दीना विविध, संपत हित सनमान ।
संप राखणौ सीखियौ, थिर चित राजसथान ॥३३॥

भावार्थः—उस बड़भागी ने अनेक प्रकार से अनेकों को सम्पत्ति, सन्मान और प्रेम प्रदान किया था। इसी से राजस्थान ने दृढ़ता पूर्वक एकता का पाठ पढ़ा।

ज्यूं वधियौ जसवंत रौ, गवरमेंट हित गाढ ।
दोयण सरव दवावियां, चौड़ै छाती चाढ ॥३४॥

भावार्थः—जब जसवन्तसिंह और गवर्नमेंट का प्रगाढ प्रेम हो गया तो सब विरोधियों को उन की छाती पर चढ कर दवा दिया।

गैरा राजी हुय गया, आयोड़ा अँगरेज ।
लाखां दरब लगावतां, जसवँत करी न जेज ॥३५॥

भावार्थः—आवश्यकता होने पर लाखों रुपये व्यय करने में जसवन्तसिंह ने कुछ भी देरी व उपेक्षा नहीं की तो आगन्तुक अँगरेज उस से खूब ही खुश हो गये।

रेलां लाय र रैत रौ, दुख कीनौ नृप दूर ।
दुनिया काल़ दुकाल़ में, पावै अन भरपूर ॥३६॥

भावार्थः—महाराजा जसवन्तसिंह ने अपने राज्य में रेलों का निर्माण करवा कर प्रजा के कई कष्ट दूर कर दिये। इस सुविधा से मारवाड़ की प्रजा को दुष्काल में भी अन्न मिल जाता है।

नैर सुधार र नीर री, दाटी सैर दुभार ।
मैरवान मुरधर महिप, हेर गया म्हैं हार ॥३७॥

भावार्थः—शहर में नहर की व्यवस्था के सुधार द्वारा पानी का कष्ट दूर कर दिया। ऐसे अनेक हितकर कार्य करने वाले हे मरुधर-महिप! हम तुझे ढूंढ २ कर हार गये हैं।

तन मन परमानंद में, सानँद रह्यौ सदीव ।
सात सुखी संसार में, जसवँत समौन जीव ॥३८॥

भवार्थः—वह सदा तन मन से परमानन्द में लीन रहा। संसार में 'सात सुखी' कहे जाने वाले जीवों में जसवंतसिंह के समान कोई (सुखी) प्राणी नहीं है।

[रचयिताः- अमरदान लाल़स]

कीरत सूं हुय गौ कमँध, जगवल्लभ जसवंत ।
कीरत री महमा करै, इल़ में संत असंत ॥३९॥

भावार्थः—वह कबंध जसवन्तसिंह अपनी कीर्ति द्वारा जगवल्लभ बन गया था। ठीक ही है, कीर्ति की महिमा तो सज्जन और दुर्जन सभी करते हैं।

सोरठा

पुल़ धिन बैठौ पाट, तिण दिन सूं तखतेस रै ।
उण दिन मिटी उचाट, जोधाणै री नृप जसा ॥ १ ॥

भावार्थः—बहुमूल्य घोड़े और कई बहुमूल्य घोड़ियों के साथ, नजर लगे वैसे तेरे समान सवार के जोड़े, हे जसवन्त! संसार में बहुत ही थोड़े होंगे।

यूं तो सौख अनेक, किया जौख सूं तैं कमँध।
अजब सौख नृप एक, जग घोड़ां रौ हौ जसा ॥११॥

भावार्थः—यों तो बड़े चाव से तैंने कई तरह के शौक़ किये थे, किन्तु, हे जसवन्त! तेरा घोड़ों का शौक़ तो संसार में बेमिसाल ही था।

घोड़ा के घर जाम, घर जामी केइ घोड़ियां।
ऊभोड़ी आराम, जग लेती थारी जसा ॥१२॥

भावार्थः—तेरे कई घर जाइन्दा घोड़े और कई घर जाइन्दा घोड़ियें, हे जसवन्त! संसार में आराम किया करती थीं।

बातां गई बिलाय, सपनौ हो कै सांपरत।
कैतां कई न जाय, जिय री जिय जाणै जसा ॥१३॥

भावार्थः—वे बातें ही चली गई! वह स्वप्न था कि प्रत्यक्ष! कुछ कहा ही नहीं जाता। हे जसवन्त! मन की मन ही जानता है।

सुख दे गौ समराट, तोटौ रोटी रौ न तो।
आठूं पौर उचाट, जावै नहँ जियरी जसा ॥१४॥

भावार्थः—हे सम्राट! तू हमें सब प्रकार से सुखी बना गया। निर्वाह की तो कमी ही नहीं। फिर भी तेरे बिना हे जसवन्त! मन की उद्विग्नता तो आठों ही पहर बनी रहती है।

जींवण मरण अजाण, नहिं गैला सैणा नहीं ।
अधमरियां ऐनांण, जाणां म्हैं म्हांरा जसा ॥१५॥

भावार्थः—जीवन और मरण से न तो समझदार अनभिज्ञ हैं और न वे समझे। किन्तु हमारे जैसे अधमरों के लक्षण हे जसवन्त! हम ही जानते हैं।

खावण पीवण खैर, सैर करण चीजां सरब ।
हा! हा! तो विन हेर, जैर जिसो जग है जसा ॥१६॥

भावार्थः—खाने पीने की कोई कमी नहीं और सैर सपाटे की सब ही चीजे मौजूद हैं। परन्तु हे जसवन्त! हमारे लिए तो सारा संसार ही जहर के समान हो गया है।

जीणा जो लग जोय, पीणा गुटका जैर पिण ।
लाखीणा दग लोय, जी सूं नहं भूलां जसा ॥१७॥

भावार्थः—जब तक ज़िंदगी है, जहर के घूंट पीते ही रहेंगे। परन्तु हे जसवन्तसिंह! तेरे वे लाखीणे लोचन भुलाये नहीं जाते हैं।

संग रमे तव सांम, वे उमंग ऐसा करी ।
तूं रंग गयौ तमाम, जग विरंग लागै जसा ॥१८॥

भावार्थः—हे स्वामिन्! तेरे साथ रह कर उमंग के साथ हमने क्या क्या ऐश आराम किये थे! वह सारा रंग जो तुझ से ही था, चला गया। जसवन्तसिंह! अब सारा संसार ही फीका मालूम होता है।

नहिं बोलां तो नीच, जो बोलां नीलजा जपै ।
वसणौ दोजक बीच, जग हसणौ बाकी जसा ॥१९॥

भावार्थः—नहीं बोलते हैं तो नीच कहलाते हैं बोलते हैं तो लोग निर्लज्ज कहते हैं, इस नरक-निवास में तो अब जसवंतसिंह ! जग हँसाई ही-बाकी है।

दीसै बाहर दौर, जलियोड़ा छाणा ज्युं ही।
तन रो सारौ तौर, जी लेग्यौ थारौ जसा ॥२०॥

भावार्थः—शरीर का बाहरी डौला जले हुए कंडे के समान दिखाई जरूर दे रहा है। परन्तु जसवत ! उसका सारा ढंग ढांचा जो था वह तो तेरे प्राण के साथ ही चला गया।

उर जीवण नहँ आस, वास करम बाकी रसै।
सोरौ हे नहँ सास, जिय दोरौ थां बिन जसा ॥२१॥

भावार्थः—हृदय में जीवन की कोई आशा नहीं है—केवल कर्म भोग से जिन्दगी निकल रही है। श्वास तक आराम से नहीं आता।जस-वन्त ! तेरे बिना जी बहुत दुःखी है।

घट में औघट घाट, घड़ी २ घड़ता रहां।
बैसी कब औ बाट, जिय दुखियारौ हे जसा ॥२२॥

भावार्थः—हृदय में हर घड़ी अनेक प्रकार की कई कल्पनायें चलती रहती हैं। जसवन्त ! यह दुखिया जीव भी कब उसी मार्ग पर चल पड़ेगा ?

राजा औ महाराज, घर घर में बैठा घणा।
सारां रौ सिरताज, जग तूं गौ खाँवँद जसा ॥२३॥

भावार्थः—संसार में कई राजा महाराजा जगह जगह मौजूद हैं। परन्तु उन सब का सरताज, हे मालिक जसवन्त ! तू चला गया।

महपतिया मरजाद, वांकापण राखै विहद ।
सीधापणौ सवाद, जबर लियौ खांवँद जसा ॥२४॥

भावार्थः—राजा लोग विविध प्रकार से अपनी मर्यादा और वांकापन बनाये रहते हैं। परन्तु सीधेपन का जबर्दस्त आनन्द तो हे जसवन्त ! तूने ही लिया।

लसकर राखै लार, धन जस कारण धर-धणी ।
एकल फिर असवार, जस लीनौ धन दे जसा ॥२४॥

भावार्थः—पृथ्वीपति अपने यश के लिये वैभव सम्पदा और लश्कर साथ लिये रहते हैं परंतु एकाकी सवार वन घूम घूम कर और धन दौलत दे दे कर तो हे जसवन्त ! तूने ही यश प्राप्त किया।

अत छोटै उनमान, रैणी तूं रैतौ रसा ।
देवण विरियां दान, जद मोटौ वणतौ जसा ॥२५॥

भावार्थः—तेरा रहन सहन बहुत ही साधारण था, किन्तु जब किसी को दान देने का समय आता तो उस समय, जसवन्त ! बहुत ही बड़ा बन जाता था।

राजावां री रीझ, सुखदाई सारां सुणी ।
खांवँद थारी खीझ, जग निहाल करती जसा ॥२६॥

भावार्थः—सब यह तो जानते हैं कि राजाओं की रीझ से लोग सुखी हो जाते हैं। परन्तु हे स्वामी जसवन्त ! तेरी तो खीझ भी संसार में लोगों को निहाल कर देती थी।

राजी हुय रीझांह, रात न बाकी राखतौ ।
चीजां पर चीजांह, जद देतौ खाँवँद जसा ॥२७॥

भावार्थः—हे स्वामी जसवन्त ! कोई दिन खाली नहीं जाता था जब तू प्रसन्न हो कर बखशीश में लोगों को चीजों पर चीजें न दिये जाता हो ।

बुवौ जिकण तूं बाट, चित सूं बाट चितारसी ।
थें कीना सह थाट, जग में पग पग हे जसा ॥२८॥

भावार्थः—हे जसवन्त सिंह ! जिस मार्ग से भी तू निकल गया उस में पग पग पर तूने हर तरह की बहबूदी कर दी तुझे वह मार्ग भी हृदय से स्मरण करता रहेगा ।

माफ करण मा बाप, खून कियोड़ा खलक नै ।
आप सरीखा आप, जग मांही दूजा जसा ॥२९॥

भावार्थः—संसार में हे जसवन्त ! लोगों के किये हुए अपराधों को माता पिता के समान क्षमा कर देने वाले आप जैसे आप ही थे ।

गीत (जांगड़ौ)

आवै जद याद जसां तद आवै, देख दसा दुखियारी ।
रसा गयौ तू हा राजेश्वर, छोड जसा छत्रधारी ॥ १ ॥

रही सुछंद रैत तव राजस, सुभ अमंद सुखियारी ।
आणँदकंद एकदम उठग्यौ, तखतनंद अवतारी ॥ २ ॥

राजसथान रटै कविराजा, कीरत दान कहाणी ।
गयौ जहान हूँत गुणग्राहक, मान हरौ माडाणी ॥ ३ ॥

हर घड़ियौ हित सूं निज हाथां, जड़ियौ गढ जोधाणै ।
झलझलाट करतौ नग झड़ियौ, पड़ियौ लंब पयाणै ॥ ४ ॥

अरे सोध अवरोध अचाणक, बोध मोद बिसराया ।
प्राणनाथ हा नाथ जोधपुर, गौरव सौध गणाया ॥ ५ ॥
हा हा दियै घरोवर हेला, पुरजण हियै प्रलापा ।
जियै जिके नहँ जियै जाण जग, कियै अनेक कलापा ॥ ६ ॥
धुकी चराकां हा दिन धौलै, मादिन सोर मचायौ ।
नाद सुवन पत्ति निस दिन, सादिन नहीं सुहायौ ॥ ७ ॥
व्याकुलतां घुलतां बलतां वा, सरघट पुलतां साली ।
आकुलतां अंतिम असवारी, चँवरां ढुलतां चाली ॥ ८ ॥
भग भग उठै हिया में भालां, दग दग जल दग डारै ।
मग मग लखै आवतौ मारू, पग पग प्रजा पुकारै ॥ ९ ॥
बरसण लागा नैण बिरंगा, तरसण लागा तीठा ।
परसण लागा पाव दुहेला, दरसण छेला दीठा ॥१०॥
उग्ध ललाड़ नीर भव आंखां, नाक कीर छिव न्यारी ।
दंत भुजा वध दौर धीर धर, उर तसवीर उतारी ॥११॥
राग रग उछरंग रचाणा, बाग राइके बाकी ।
सोग अथाग सिंधु विच सारां, त्याग पधारण ताकी ॥१२॥
दीनदयाल छेह नहि देता, सदा अछेह सभावां ।
पण तज देह अवेह पधारो, एह अनेह अभावां ॥१३॥
दुरधर वेला कठण दुहेली, उर धर म्हे अकुलावां ।
मुरधर धणी मसांण मेल नै, पुर घर जाण न पावां ॥१४॥
मन माणी घर बिन मुरभाणा, तन हाणी अव त्राता ।
जाणी धन बस मुसकल जुड़णा, अन पाणी अनदाता ॥१५॥

करै कुमार भलाई कितरा, जेट तुमार जमाड़ी ।
और खुमार चढ़ी नहिं अतरे, एक दुमार अगाड़ी ॥१६॥
कर गुण याद कियो कललाटौ, ज्यूं नभ फाटो जाणै ।
गोटमगोट दियौ गणणाटौ, संणणाटौ समसाणै ॥१७॥
प्रेत करम कीन्हां सूं पैलां, और वैंत नहिं आयौ ।
देव कुंड उण रैत झुंड दग, द्वैत कुंड दरसायौ ॥१८॥
दाहा मव होतां देसोती, स्वाहा चव समसाणै ।
आहा हव हुयग्यौ अरियां उर, हा हा रव हिंद वाणै ॥१६॥
हाथ धोय बैठा साहिब नै, साराइ खोय सनेही ।
हाय अनूप राख हुयगीवा, दोय घड़ी में देही ॥२०॥
सास उसास आप री सोभा, नास हुयांइ निजरावै ।
फूल गयौ तोड़ खास फूल री; वास कदे न विलावै ॥२१॥
गूंघै गोली तन गुड़कावै, ऊंघै नींद न आवै ।
सूंघै सुजस इतर तव साजन, मूंघै मोल मुलावै ॥२२॥
हा मावाप हमीर हेड़ाऊ, सुपहां दाप सवाया ।
अगलौ पाप फिरै कोइ आड़ौ, आप निजर नहिं आया ॥२३॥
धोय धाय तन चख जल धारां, रोय रोय नर नारी ।
जोय जोय थाका जग जामी, कोय न लागी कारी ॥२४॥
छबर छबर आंसू धर छिड़की , उर में सबर न आई ।
जबर पयाणै गौ जग पालक, पाछी खबर न पाई ॥२५॥
आनैं पौर अंगीठा ओपम, उर मीठा वच आणै ।
मौजां देता नैण मजीठा, जो दीठा सो जाणै ॥२६॥

लियां कनौजी दल निज लारै, गुण फौजी बल गाजा ।
एक रसां आजे चित चोजी, मन मौजी महाराजा ॥२७॥
तो बिन हाय खाय तन तिंवरां, इंवरां जगत इसारां ।
सिंवरां थनै हिंदवा-सूरज विंवरां नहीं विसारां ॥२८॥
पांखां खोस गयो प्रभु प्यारो, नित नांखां निसकारो ।
नहिं झांकां तोइ हुवै न न्यारो, आंखां मूं अणीयारो ॥२९॥
झूलाया किण रा नहीं झूलां, फूलाया नहिं फूलां ।
भूलाया थारा म्हैं भूलां, भूलाया नहिं भूलां ॥३०॥
असरण सरण वणाई यूं ही, जनम मरण पुल जेडी ।
तारण तरण गयो जसवन्त तू, कारण करण कन्हेडी ॥३१॥
तूं मर अमर हुवो तखतावत, लै जस मूं मर लाखां ।
घूमर आव जवू तुरण घण, "ऊमर" री अभलाखां ॥३२॥

भावार्थः—हे छत्रधारी जसवन्तसिंह ! तू हमें छोड़ कर चला गया। अपनी इस दुःख पूर्ण दशा में जब जब तेरी याद आती है, हम मूर्छित हो जाते हैं। तेरे राज्यकाल में प्रजा ने स्वच्छन्दता पूर्वक असित शुभ सुखोपभोग किया। हा ! अवतार स्वरूप तख्तनंद ! तू अचानक ही उठ चला। राजस्थान के कवि वर जिसके दान और कीर्ति कथाओं को रटा करते हैं, वह गुण ग्राहक मानसिंह का पौत्र संसार से विवशतया चला गया। प्रभु ने जिसे स्वयं अपने हाथों से घड़ कर जोधपुर के गढ़ को मण्डित कर दिया था, वह देदीप्यमान रत्नस्वरूप उस गढ़ से विलग हो अनन्त मार्ग पर चल पड़ा। हा ! राजप्रासाद अचानक बन्द हो गये। उनकी सारी चहल पहल और प्रसन्नता जाती रही। राजप्रासाद का प्रत्येक झरोखा विलाप करता सा दिखाई देता है—हा प्राणनाथ, हा !

जोधपुर नरेश ! घर घर में हृदय से प्रलाप करते हुए पुरजन पुकार रहे हैं और अनेक प्रकार के विलाप करते हुए वे जीते हुए भी मृतक समान हो रहे हैं। हा ! दिन दहाड़े मशालें जलने लगीं और नारी समुदाय ने क्रन्दनपूर्ण कोलाहल मचा दिया। सब प्रकार के सुवाद्य बजने लगे किंतु उनकी ध्वनि अतीव हृदयवेधक प्रतीत होने लगी ! व्याकुलता से दम घुटते हुए, दग्ध हृदय, व्याकुलचित्त लोगों के समाज-सहित वह अन्तिम सवारी चँवर ढुलते हुए स्मशान की ओर चली। दहकती ज्वालायें हृदय में उठ रही हैं, आंखें पानी बरसा रही हैं और अपने स्वामी को आता हुआ देख कर प्रत्येक राजमार्ग में पग पग पर प्रजा पुकार रही है। अगणित फीकी आंखें बरसने लगीं। तृषित नेत्रों ने अन्तिम दर्शन किये। लोग भक्ति पूर्वक चरण स्पर्श करने लगे। बड़ा धैर्य धारण करके प्रजा ने अपने स्वामी की तस्वीर हृदय में उतार ली—आजानुबाहु, उन्नत ललाट, कमल के समान नैत्र और शुक के समान नासिका। हे दीन दयाल ! आप तो कभी किसी को छेह नहीं देते थे आपका स्वभाव ही ऐसा था। किन्तु अब देह को भी तज कर पधार रहे हो, यह निर्मोही-पन हमें नहीं सुहाता। क्या राइ के बाग में रागरंग और उत्सव बाकी रह गये थे सो हम सब को अथाह शोक सागर में छोड़कर आपने सदा के लिये वहीं पधार जाने की सोची ? इस कठिन, दुर्धर और दुःखद वेला में हम लोग अकुला रहे हैं। मरुधर पति को स्मशान में रख कर घर और नगर की ओर हमारे पैर नहीं बढ़ रहे हैं। उस महामना के बिना हमारे मन मुरझा रहे हैं। कोई कितनी ही हमारे साथ सहानुभूति करे इस दुःख के आगे उसका कोई असर नहीं होगा। स्मशान में एकत्रित विशाल जन समूह चिता की धधकती ज्वाला एवं धुँए के गोट को देखते ही आप के गुणों के स्मरण से इस प्रकार रोदन-विलाप का कोलाहल कर उठा मानों आकाश फट पड़ा। प्रेत कर्म करने से पहले सारे प्रजा-समूह की आँखों में वह देवकुण्ड और कुछ नहीं दैत्यकुण्ड ही

दिखाई दिया। हे देशपति ! तेरा शव-दाह होते समय श्मशान में जो स्वाहा की ध्वनि हुई वह मानों शत्रु-हृदयों में अहाहा और हिन्दुस्थान में हा हा की ही प्रतिध्वनि थी। सब स्नेही जन अपने परम स्नेही को खोकर उससे हाथ धो बैठे हैं। हाय ! वह अनुपम देह दो घड़ी में ही भस्मीभूत हो गई। आप के चले जाने पर भी आप के गुणों की शोभा श्वासोच्छ्वास के साथ स्मरण हो रही है-फूल सूख गया किन्तु उसकी सुगन्धि कभी नष्ट नहीं होगी। हमारे शरीर इधर उधर निष्प्राण से हो कर हिल डुल मात्र रहे हैं। नींद नहीं आती। सुभटों के लिये सवाये दर्प के कारण स्वरूप, हम्मीर हेड़ाऊ के समान महादानी हे माता पिता ! हमारे कोई पूर्व कृत पाप ही उदय हुए हैं सो आप अब नजर नहीं आ रहे हैं। हे स्वामी ! आँखों के पानी से अपने शरीरों को धोते हुए नर नारियों ने रोते बिलखते जगत् में तुझे ढूँढा; किन्तु कोई परिणाम नहीं—तेरे दर्शन नहीं हुए। अश्रुधाराओं से धरती भिगो दी, हृदय फिर भी हलका नहीं हुआ। वह जगपालक अनन्त पथ का पथिक बन गया- उसकी कोई खबर भी नहीं मिली। वे तेरे मधुर वचन अब आठों पहर अँगारों के समान हृदय में दहक रहे हैं। रीझ मौज देते समय तेरे उन रक्ताभ नेत्रों को जिसने देखा है वही जानता है कि उनमें कितना उदार भाव भरा रहता था। अपना कन्नौजी (राठौड़ी) दल साथ लिये हुये, हे चित चोजी, मन मौजी महाराजा ! एक बार तो वापस आजाना। तुम्हारे बिना शरीर क्षीण हो रहा है। हे हिन्दू-सूर्य तुझे क्षण भर भी नहीं भूल सकते हैं। हा ! हमारा वह स्वामी हमें असहाय कर के चला गया। हम नित निःश्वास छोड़ रहे हैं। इधर उधर दृष्टि नहीं डालने पर भी वह चेहरा आँखों से ओझल नहीं होता। हे स्वामी। तुम्हारे द्वारा प्रेम के झूलों में झुलाये हुए हम लोग, किसी के डुलाये जाने पर भी कैसे डुल सकते हैं ? किसी के फुलाने पर कैसे फूल सकते हैं और किसी के द्वारा भुलाये जाने पर भी तुम्हें कैसे भूल सकते

हैं। उस अशरण शरण प्रभु ने जन्म-मृत्यु का जो समय निर्धारित कर दिया है वह वैसा ही रहता है। हे जसवन्त ! तू भी उस तारण तरण की इच्छानुसार उसके दरबार में चला गया। हे तख्तसिंह के सुपुत्र ! तू तो सूमरा और लाखा के समान यश लाभ करके मरकर भी अमर हो गया हैं। किन्तु कवि "ऊमर" की तो यही अभिलाषा है कि हे जसवन्त ! तू तो उस पूर्ण ब्रह्म के पास घूम फिर कर वापस ही चला आ !

[रचयिताः- अमरदान लालस]

रावल़ जाम भाटी

गीत

कहिस्यां तो तूझ भलौ करुणाकर।
नप एकण सह धरे बिचार ॥
रावल़ जाम सरीसौ राजा।
वले घड़िस जो दूजी वार ॥ १ ॥

पूरण प्रभत प्रजा प्रतपाल़ग।
दल़पत दियण दोखियां दाव ॥
भुयण घड़िस जो भलौ भाखसां।
रावल़ जाम सरीसौ राव ॥ २ ॥

लीलविलास जिसौ लाखावत।
जुगत किसी हव जाणिस जोड़ ॥
भागौ हेकण निमख भांजतै।
करतां कलप जायसी कोड़ ॥ ३ ॥

जो पिण घड़िस जुगाँ जातंताँ।
भंजण घड़ण समरथ भगवान॥
सकस नहीं कोई वहलौ सरजे।
राजा सुचर रीत राजान॥४॥

भावार्थः—हे करुणाकर! सम्पूर्ण विचार पूर्वक रावल जाम के जैसे राजा का एक शरीर भी तू फिर निर्माण कर देगा तो तुझे हम शाबास कहेंगे। रावल जाम के जैसा पूर्ण प्रभुता सम्पन्न, प्रजा-प्रतिपालक और शत्रुओं पर दाव देने वाला महान् सेनापति राजा त्रिभुवन में कहीं भी फिर रच देगा तो हम तुझे शाबास कहेंगे। हे लीला विलास! लाखावत के जैसा कोई अब फिर तू किन युक्तियों से बना सकेगा? तुझे उसको नष्ट करते तो एक निमेष मात्र लगा किन्तु उसे फिर बनाते करोड़ों कल्प बीत जाएँगे। हे भगवन् तू बिगाड़ने और बनाने में समर्थ है, इसलिये यदि कभी तू निर्माण कर भी देगा तो राजाओं की रीतियों को इतनी भली प्रकार से निभाने वाला राजा तो कदाचित् ही तू सर्जन कर सकेगा!

[रचयिताः- अज्ञात]

ठाकुर गोरधन चंडावल

गीत

ग्रहसी अगन भखै की ग्रीधण।
परम किसूं बांधै गल़ पोय॥
धड़ धारां सारौ गोवरधन।
लागे गयौ तुहालौ लोय॥१॥

चरै अगन की पंखण आचरै ।
सिव कँठ किसूं करै सिणगार ॥
करमालां चांदोत कलेवर ।
बाढ चढेगौ भारत वार ॥ २ ॥

आतस विहँग किसू आचरै ।
ईसर की ठालै उतवंग ॥
अरि आवधां अभनमौ ईसर ।
ऊतरियौ धारां लग अंग ॥ ३ ॥

चरियौ अगन नको चंचाली ।
भव चै काम न आयौ माल ॥
मारू राव असमरां मुँहडै ।
तिल तिल हुय पड़ियौ रिणताल ॥ ४ ॥

भावार्थः—क्या तो अग्नि ग्रहण करेगी, क्या गिद्धिनी खायगी और क्या महेश अपनी माला में पिरोकर गले बांधेंगे ? गौवर्द्धन ! तेरा तो सारा शरीर ही तलवारों की धारों के लग गया । अनल क्या खावे आमिष भोजी पक्षी आस्वादन क्या करें और महादेव अपने कंठ को किससे सुशोभित करें ? उस चांदावत का कलेवर रण क्षेत्र में कृपाणों की सुती दण धारों के ही भेंट हो गया । हुतभुक् और वे विहंग क्या भक्षण करें और शिव अन्य किसके सिर को अपनी माला के लिये चुनें ? वह अभिनव ईसरसिंह, अरि आयुधों की धारों पर ही समाप्त हो गया । उसे न तो पावक ने चक्खा, न गिद्धिनी ने और न उस का सिर ही मुण्ड माला के काम आया । वह मारू राव तो तलवारों की धारों से तिल तिल होकर रण क्षेत्र में ही रह गया ।

[रचयिताः- अज्ञात]

ठाकुर जीवराज और उनकी पत्नी

छप्पय

जीवौ हाल्यौ जदी, दीह झंकौ दरसणौ ।
जीवौ हाल्यौ जदी, विरँग धूहड़ वरसाणौ ॥
जीवौ हाल्यौ जदी, सीस धूणौ अहिराजा ।
जीवौ हाल्यौ जदी, थँभै दिनकर रथ चाजा ॥
जीवराज आज तैं तज जगत, अगन झलां तन ओरिया
सैंण नीसास मूकै सदा, मँगरै कूकै मोरिया ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस दिन जीवराज ने स्वर्ग के लिये प्रयाण किया, उस दिन आकाश धूमिल दिखाई दिया । जिस दिन जीवराज ने परलोक के लिये प्रस्थान किया, धूहड़ का वंश फीका हो गया । जब जीवराज देह छोड़ चला, ध्रुवतीण ज्योति हो गया, शेषनाग ने सिर हिला दिया और सूर्य ने अपने रथ के घोड़े रोक दिये ।

जीवराज ! तूने आज संसार तज कर अपना शरीर अग्निज्वालाओं के समर्पित कर दिया है— यह जानकर उस के स्नेही तो निःश्वास छोड़ ही रहे हैं, शोकाकुल हो पर्वतों के मयूर भी कूक मचा रहे हैं ।

तोरण आवा तेम पाल सरवर दिस जातां ।
बनड़ा बीमा तेम, श्रवण कुण नाम सुणाता ॥
त्रिय कुण चढती तप्प, कवण सणगार करन्ती ।
कुण झलती नालेर, घणी कज हरक धरन्ती ॥
प्रिय घरै खुसाल न होती प्रिया, जीवो हेक लजावतौ ।
तो विना काठ चढती कवण, गीता कवण गवावतौ ॥ २ ॥

भावार्थः—तोरण पर दूल्हा आता है वैसे तालाब की पाल की ओर स्मशान में पति के जाते समय सती होने के लिये हर्षित हो कौन शृंगार कर के नारियल हाथ में लेती, मांगलीक गीतों के समान राम नाम की ध्वनि कौन सुनवातीं, कौन गीता का पवित्र गान कर वारती और हे खुशालकुमारी। तू यदि जीवराज की प्रियतमा न होती तो उसके साथ चितारोहण कौन करती,—शायद जीवराज-अकेला ही जाता।

रंग वार री रात, हरक चित कामण होई।
रंग वार री रात, मफे सणगार स कोई॥
रंग वार री रात, प्याला भर भर मद पीवै।
रंग वार री रात, जीव पिउ दीठां जीवै॥
रँग वार तणी रंग रात जिम।
प्रीत लगन लग पीव में॥
वसन री भाल राती वलभ।
आणी खुशाली जीव में॥ ३॥

भावार्थः—सुहाग रात के समय जिस प्रकार नवोढा के चित्त में हर्ष होता हैं, सुहागरात के अवसर पर जिस प्रकार सब शृंगार करती हैं, सुहागरात के समय जिस प्रकार एक दूसरे को देख कर सब दम्पति आनंद विभोर होते हैं और आसव पान करते हैं उसी प्रकार सुहगरात के प्रेम में तन्मय हो खुशालकुमारी ने लाल लाल अग्नि ज्वालाओं को प्राणोपम प्रिय मान लिया!

सुद बारस भादवै, देह मेली चालक।
उणी समय में आय, एक बोली गृह-पायक॥
विदुर जात कुल विना, बात कुलवन्त विचारी।
सुख री सीरण स्त्रियां, बैठ रहि सोच विचारी॥

पुल घड़ी पहर छेटी पड़ै,

सोक घणा दिन सालसी ।

धण दोय वरै ज्यां री धणी,

हाय अकेलौ हालसी ॥ ४ ॥

भावार्थः भाद्रपद की शुक्ला द्वादशी को चालुक्यराव ने देह-त्याग किया, तब दासी ने अन्तःपुर में आकर कहा कि जो स्त्रियाँ केवल सुख की ही संगिनी होती हैं, वे इस अवसर पर सोचती विचारती बैठी रहती हैं। इस प्रकार उस दासी ने अकुलीन जाति की होते हुए भी कुलीनता की उच्चतम प्रेरणा देते हुए कहा,-क्या वह पति जिसके दो दो स्त्रियाँ हैं, अकेला ही परलोक गमन करेगा ? यहां रहने पर तो वैधव्य-शोक न मालूम कितने दिन सहन करना पड़ेगा; अतः उठो, अब पति के साथ सहगमन करने में, पल-मात्र भर का भी विलंब हो रहा है।

आगम काग उडाय, सदा लेती सुकनाई।

रुकम छंद पद रजत, बोल वरदानी वाई ॥

आगम काग उडाय, नित्त तुम बाट निहारी।

वर जीवा वासते, राधे जिम कुंजाबिहारी ॥

मद पीय पाय रंग माणवा,

सखि नित नजर सुहावणी।

सो समौ जाय सीसोदणी,

आगम काग उडावणी ॥ ५ ॥

भावार्थः—पति कहीं बाहिर होते थे, तब उन के मिलन के लिये तू प्रतीक्षा करती हुई शकुन लेने को कौवे उड़ाया करती थी। तू अपने

प्रियतम जीवराज के लिये वैसी ही थी जैसी श्री कृष्ण के लिये राधिका। आमोद प्रमोद करने और आसवपान करने का समय जिस प्रकार सदा सुहावना लगता था उसी प्रकार हे शिशोदणी! उस प्रेम की परीक्षा का वह समय आ रहा है।

प्रेमसंध पतिव्रता, खरै मन मतै खुमाली।
साथै जलवा स्याम, बात हाथै जिण झाली॥
दासी ने दोय जाब, दिया मन मते धारे।
जनमपत्रि सुण जाव, रही आगम पखारे॥
कई जाण वैण सैणी कहै,
खरी न जाणा खबरके॥
एकलौ कोई न गयौ अगे,
ये क्यूं जासी अबरकै॥६॥

भावार्थ:—दासी को आवश्यक उत्तर देकर प्रेम-पगी उस पतिव्रता खुशालकुमारी ने सच्चे हृदय से पति के साथ जल जाने का सकल्प कर लिया। उसने पहिले ही जन्मपत्री सुन कर भविष्यवाणी कर दी थी तदनुसार दासी को फिर कहा—सयानी! तू क्या समझ कर ये वचन कह रही है? इस घर का स्वामी पहिले भी कोई अकेला नहीं गया तो ये ही क्यों अकेले जावेंगे?

एकल जाय अतीत, जती कोह एकल जासी।
घण नुगरी रो धणी, गरढ़ मरसी ग्रहवासी॥
त्रिय विन जासी तुरक, नता त्रिन जासी नाजर।
लूटण दुख त्रिध खित, वांम रहजाय जिकांवर॥

पोसाख हीण सोसा खमण,
जीतब अब बेकाजवौ।
एकलौ नीज जावै अली,
रूप नगर रौ राजवी ॥७॥

भावार्थः—कोई अतीत (साधु-सन्यासी) अकेला जा सकता है, कोई यति अकेला जावेगा, किसी नगरी का वृद्ध पति अकेला-जा सकता है, स्त्री के साथ बिना कोई मुसलमान जा सकता है या कोई नाज़िर जिसका कोई दाम्पत्य संबंध नहीं। विधाता के लिखे दुःखों को भोगने के लिये सुहाग की वेशभूषा से हीन होकर संसार के व्यंग्य सहन करने के लिये जिस वर की वामा सह गमन न कर पीछे रह जाती है, उसके जीवन को धिक्कार है। हे सखि! रूप नगर का राजवी हर्गिज अकेला नहीं जावेगा।

हंठो कियौ न हियौ, कियौ सासूरो करनैं।
हंठौ कियौ न हियौ, सोभलिया चख भरनैं॥
हंठौ कियौ न हियौ, मजन पूजनकर दन भरवा।
हंठौ कियौ न हियौ, उदम मनधन आदरवा॥
जग को न कियौ कहियौ जिकण,
सगत पैला री सोगवा॥
दुलह री लार सीसोदणी,
हियौ कियौ तन होमवा॥ ८॥

भावार्थः—अपनी सास का कथन स्वीकार कर के उस सती ने संकल्प को नहीं तोड़ा, वियोग दुःख से अश्रु पूरित नेत्र हो उसने अपना

दिल कमजोर नहीं किया। जीवित रह कर दान पुण्य, भजन पूजन करके दिन बिताने के लिये उसने अपने हृदय को निर्बल नहीं बनाया और न उसने लोगों की बातों में आकर धन वैभव के लिये अपने दिल को ललचाया। बस शीशोदणी ने तो अपने प्राणपति के साथ निज तन को होम देने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया।

जिण नज़रां देखिया, पाय नूपुर झमकन्ता।
बाजू बंध री लूम, सहत चूड़ा चमकन्ता॥
रँग सुरंग कप्पड़ा, हाथ महँदी रँग रत्ता।
चख अंजन रोरीया, मंजन केसर कर वत्ता॥
घण सुख विलास चालुक घरे।
भोग विभव वो भावसी॥
इण नजर अवे विधवा पणौ।
दैव नौज देखावसी॥६॥

भावार्थः—जिन आंखों ने नूपुरों की झनकार के साथ इन पैरों को देखा है, जिन आंखों ने बाजूबंध की लूम के साथ चमकते हुए चूड़े को देखा है, जिन आंखों ने रंगविरंगे कपड़ों से सुशोभित और केसरादि के उबटनों से सुवासित इस शरीर को देखा है, जिन आँखों ने इन हाथों को सदा मेंहदी रंजित देखा है जिन आंखों ने स्वयं अपने को सदा सुरमा सारे रक्खा है और पतिदेव चालुक्य के घर में जिन आंखों ने अनेक सुख विलास देखे हैं, उन आंखों को प्रभु मेरा वैधव्य कभी नहीं दिखावेगा।

कामण रै कारणै, अतर कपडा मद लावै।
कामण रै कारणै, तीज नदियां तर जावै॥
कामण रै कारणै, चित्त हरि भगति न सोधै।
कामण रै कारणै, आप आतम नह बोधै॥

सुख दुख एह दाखी सुखै, दुख कुल खोट लगाइयाँ।
वर गयो पछै दूजत बधै, लानत तिकाँ लुगाइयाँ ॥१०॥

भावार्थ—स्त्री के लिये पुरुष अच्छे अच्छे वस्त्र, आभूषण, इत्र और आसव लाता है। कामिनी के लिये पुरुष तीज के त्यौहार पर उस के पास पहुँचने को बाढ़ आई हुई नदियों को तैर जाता है और स्त्री के स्नेह में आबद्ध होने के कारण ही पुरुष का चित्त हरिभक्ति की ओर नहीं जाता और न अपनी आत्मा का बोध वह कर पाता है। हे आली! इतना सब कुछ करने वाले अपने पति के परलोक गमन के बाद भी जो स्त्रियाँ संसार सुख की आशा लिये बैठी रहती हैं उन्हें धिक्कार है, लानत है। मैं तो उनके कुल की तुच्छता और प्रेम में कुटिलता समझती हूँ।

जुदा रह्या न जीव, चैत भादव रित सावण।
पोस बसंत रित प्रीत, दीप माला मन भावण॥
जुदा रह्या न जीव, माघ फागण रित सरदी।
कौडिक करौ उपाय, हरड़ क्यूं तज हैं जरदी॥

दामना कहै सीसोदणी,
प्रीतमा सँग बर पालुंगे।
बीज नैं गाज गहरा बिचै,
आज जुदा किम आलुंगे ॥११॥

भावार्थ—जिन प्रियतम के साथ कहीं ऋतुओं में कभी जीव जुदा नहीं हुआ और होली, दीवाली आदि त्यौहारों पर नाना प्रकार के आमोद किये थे, उनके साथ की वह प्रीति क्या हलदी अपनी जर्दी अर्थात् पीलापन को क्यों कर छोड़ देगी? सीसोदणी कहती है कि प्रियतम जब आज तालाब की पाल (स्मशान) की ओर जारहे हैं तो इस बिजली की कौंध और गंभीर घन—गर्जन के समय में, मैं उनसे जुदा कैसे रह सकती हूँ—मुझे छुड़ा ही कैसे सकता है?

परवाई वज पवन, बाहल़ अनड़ां रा वाजै ।
दिस दिस रींछी दौड़, छटा झल़मल़ रुत छाजै ॥
हर वल बुग पँथ हल़ै, स्याम घण वदल़ सुरंगा ।
वन गेहरा रँग वणै, तणै इँदधनख दुरंगा ॥
झंकधार अखँड मोरां कुहक,
गहरै अंबर गाजतां ।
खुसहाल उमँग हरख र चली,
वर सँग ढोल वजावतां ॥१२॥

भावार्थः—पुरवाई हवा चल रही है, श्याम घटा छा रही है और उसके आगे हलके हलके बद्दल इधर उधर दौड़े जा रहे हैं। बक-पंक्तियाँ इन के आगे आगे उड़ रही हैं और इन्द्र धनुष तन रहे हैं। बिजली की चका चौंध हो रही है और अखण्ड वारिधारा गिर रही है। आकाश गंभीर गर्जन कर रहा है और मयूर बोल रहे हैं, वनराजि का रंग गहरा हो गया है और पर्वतों से प्रवाहित नालों की ध्वनि हो रही है, ऐसे समय में पति के साथ सती होने को खुशालकुमारी उमंग के साथ ढोल बजवाती हुई सहर्ष चली।

पलक मींचियां पछै, हेतू टल़ टल़ नै निसरै ।
पलक मींचियां पछै, बैन भी स्वारथ बिसरै ॥
पलक मींचियां पछै, मंत्री होकम मन फेरै ।
पलक मींचियां पछै, सुतन धन माल अवेरै ॥
दूसरा लेण टालौ दुवै,
नैण झरै तिण नाम रै ।
जीवा री लार जिण वर हली,
सिय वल्लभ व्है स्याम रै ॥१३॥

भावार्थः—आंखें बन्द होने पर हितेच्छु लोग भी दूर हो जाते हैं, आंखें बन्द होने पर वहिन पुत्रियाँ भी ममत्व त्याग देती हैं, आंखें बन्द होने पर मंत्री भी उसे दिये गये राजा के आदेशों की परवाह नहीं करता, आंखें बन्द होने पर पुत्र धन-दौलत सम्हालने में लग जाते हैं और दूसरे सब नाना प्रकार के वहाने वना वना कर छिप रहते हैं, ऐसे समय में वह जीवराज की प्राणवल्लभा उसके साथ हो चली।

मंजन अंजन करे, करे पौसाक सुरंगी।
कुटँव भ्रात मिल करे, दुनी दुख होय दुरंगी॥
भूखण धारण करे, करे त्याग न घर अंगण।
करे अतर भर कपड़, अमरपुर करे उमंगण॥
चालकांछाव लारै चलण,
इन्द्र परी जिम आवली।
जतरी न हुई परणी जदी,
अतरी हुई उतावली॥१४॥

भावार्थः—पति के साथ अमरपुर (स्वर्ग) जाने की उमंग में उसने स्नानादि करके वहुमूल्य इत्र से सुगन्धित रक्तवर्ण पोशाक धारण की, आभूषण धारण किये और कुटुंबी जनों से मिल भेंट कर घर से विदा हो गई। चालुक्य-वंशियों के प्रमुख अपने पति के साथ जाने के लिये वह इन्द्र की अप्सरा सी इतनी उतावली हुई, जितनी कि विवाह समय भी नहीं हुई थी।

हतलेवा रै हात, झले नालेर हसन्ती।
सुलभा दामण समी, वलभ घर तणी वसन्ती॥
हात जिकण सूं हरख, कवौ भोजन ले छोडै।
काया हौमण करै, कंथ मिलवा मन कोडै॥

जिवराज तणी कामण ज्यूही,
सुरग उमाही साथ नै ।
वर भलौ दियौ चँवरी वचै,
हतलेवौ जिण हात में ॥१५॥

भावार्थः—उस विद्युत्प्रभा सी प्रियतम के गृह की शोभास्वरूपा ने पति के साथ स्वर्गारोहण के लिये हर्षित हो अपनी काया को दग्ध कर देने के हेतु हँसते हुए, विवाह-मण्डप में पाणिग्रहण के समय वर ने जिस हाथ में हाथ दिया था उसी हाथ में सती होने का नारियल ले लिया और वह जीवराज की भार्या स्वर्ग में उससे मिलने और साथ ही रहने को उत्कंठित हो गई ।

गीत

गचै मन इसौ न छत्री रहियौ ।
वीर समोभ्रम गयौ वर ॥
बोलै नहीं उणमणी बैठी ।
कीरत भगमा भेख कर ॥१॥
मूधौ बाल न नकौ सँवारै ।
काजल सारै नयणौ केम ॥
भूपत गयौ जीवसा भोगण ।
जोगण पंगी थाई जेम ॥२॥
आछै चित जिण नै आदरतौ ।
अत रीझां देतौ उरड़ ॥
वीरम तणा जिसौ इण वारै ।
भेख उतारै किसौ भड़ ॥३॥

किरत एम कहै अनुरागी।
पत नहँ दूजो सूरत पाक ॥
ऊ जिवराज फेर जग आवै।
पहरवै सूखण पोसाक ॥४॥

भावार्थः—हृदय जिसकी ओर आकर्षित हो जाय वैसा कोई अन्य ही नहीं रहा। उस वीर के जैसा वर चला गया. इसलिये कीर्ति भगवां वेष धारण करके उन्मनी एवं मूक हुई बैठी है! उसका केशपाश उलझ-पुलझ हो रहा है। जिसे सँवारने का उसे ध्यान ही नहीं, फिर आंखों में सुरमा सारने की तो बात ही कहां? उसका भोक्ता जीवराज जैसा संसार से चला गया, अतः कीर्ति योगिनी बनी बैठी है। जो प्रेम पूर्वक उस का हार्दिक आदर करता था और दिल खोलकर दान देता था उस वीरमदेव के पुत्र के समान कौनसा सुभट है जो उस का यह वेष उतरवा दे।

कीर्ति कृपणों को कहती है कि कोई दूसरा वैसा पाकसूरत नज़र ही नहीं आता। वह जीवराज ही संसार में फिर आजाय तो मुझे सुहाग के वस्त्राभूषण धारण करावे।

मनरे! किण सूं मिलां? कवण पूछै कुसलाती!
'जीवा' ने जाचतां, जिकें वातां रहजाती॥
अवगुण पर गुण अंग, देख घर छेह न देतौ।
कवि लोभी कोचटी, जिका राजी कर लेतौ॥
जग छोड़ गयो सपना ज्युं ही, गोड़ी अंब सलगाइयां।
भावी संजोग कह का भयो, गयो सरादां सारियां॥ १ ॥

भावार्थः—जीवराज के पास याचना करने से अपनी बातें रह जाती थीं—मांग पूरी हो जाती थी (उसके लिये) हे मन ! अब किस से मिलें और कौन अपनी कुशल क्षेम पूछने वाला है ?

दूसरों के गुणावगुण—गुण दोष देख लेने पर भी घर पर आये हुए को किनारा नहीं देता था, कोई कैसा ही कुतर्की या लोभी हो उसको वह प्रसन्न कर ही लेता था ।

संसार को वह स्वप्न की भाँति छोड़ कर चल बसा। जादूगर द्वारा बनाया आम जैसे बनते ही विलीन हो जाता है उसी प्रकार भावी के संयोग से वह (जीवराज भी) अपना श्राद्ध मनाने चला गया, समाप्त हो गया ।

पूंगल में पामणो, आसी ढोलो नरवरियो ।
खावड़ खड़ माहेचो, आसी रिड़मल ईडरियो ॥
भोजो राण भणाय, आसी वाघो कोटड़ियो ।
घड़लै उण वावड़ी, आसी वदनौरे खड़ियौ ॥
रंग रै वगीच रहसो करण; माँगण रुठां मनावसी ।
सुदतार वार कोइक समै; इण मगरे फिर आवसी ॥ २ ॥

भावार्थः—पूङ्गल में ढोला नरवर, खावड़ में माहेचा, ईडर में रिड़मल, भणाय में भोजराज, कोटड़े में वाघा राठौड़ और वदनौर का स्वामी उस वट और वावड़ी के ऊपर महमान आवेंगे और रूठे हुए (कवियों) को राजी करेंगे तो फिर किसी समय इस पहाड़ (रूप नगर) पर भी वह श्रेष्ठ दानी आवेगा अर्थात् यह कल्पना मात्र है ।

[रचयिताः- अर्जुनसिंह वारहठ]

जोगीदास

[सीकर के क़िलेदार महरोली के शेखावत]

गीत

पड़ै मार गोलां सरां अलंग उड उड पड़ै ।
गयण रथअड़ बड़ै परी गैलां ॥
किला मत डगमगै सूर जोगौ कहै ।
परत मो जीवतां न दूं पैलां ॥१॥

भलाई लाज सेखां धणी मो भुजां ।
गरट थट हैंवरां करूं गज गेर ॥
औझकै मती छिवतां रहै आभ सूं ।
असमरां तमासौ देख आसेर ॥२॥

भड़ा भुरजाल हूँ जोध रौ महाभड़ ।
घड़ा लख वैरियां तणी धावै ॥
सावतौ जितै धड़ ऊपरा मूझ सिर ।
अतै अरि तूझ सिर नांह आवै ॥३॥

पाड़ खल हजारां पछै रण पौढियौ ।
भर पतर ईसरी रुधर भोगै ॥
कमल पड़ियां पछै अमल दुसहां कियौ ।
जीवतां दियौ गढ नांह जोगै ॥४॥

भावार्थ:—घमासान युद्ध वेला है, धनुष बाणों और तोपों के गोलों की मार पड़ रही है। किले के कंगूरे उड़ उड़ कर गिर रहे हैं। आकाश मार्ग में अप्सराओं के रथ आगे बढ़ रहे हैं। ऐसे समय में

शूर वीर जोगीदास किले को कहता है कि ए दुर्ग ! तू डगमगा मत। जब तक मैं जीवित हूं। तुझे हर्गिज दूसरों को न दूंगा। शेखावतों के स्वामी ने मेरी भुजाओं के भरोसे तेरी लाज मुझे सौंपी है। तू देखता रह कि मैं किस प्रकार शत्रुओं को हाथी घोड़ों सहित गिरा गिरा कर ढेर किये देता हूँ ? ए किले ! चौंक मत। तू तो आसमान ही से लगा रह और इस युद्ध में घोड़ों व सवारों के तमाशों को देखता रह ! तू देख कि महा शूरवीर जोधसिंह का यह पुत्र लाखों शत्रु सेना के सुभटों को किस प्रकार धराशायी करता है ? तू तो निश्चिंत रह, जब तक मेरे मेरे धड़, पर शिर साबित है, शत्रु तुझ पर नहीं आवेगा।

इस प्रकार गर्वोक्ति करता हुवा वह वीर वर हजारों शत्रुओं को विनष्ट कर रणभूमि में जब सो गया और उस का सिर धड़ से अलग हो गया तब कहीं शत्रु उस गढ़ पर अमल कर सके। जीवित रहते तो जोगीदास ने शत्रुओं का गढ़ पर पैर नहीं रखने दिया।

[रचयिताः—अज्ञात]

रावत जोधसिंह कोठारिया

सोरठा

पापी भरवा पेट, रहसां के राजां कनै।
थरू मरण लग थेट, नृप जोधा भूलां नहीं ॥१॥

भावार्थः—(इस) पापी पेट को भरने (निर्वाह करने) कई राजाओं के पास रहेंगे। लेकिन आदि से अंत तक (मरण पर्यन्त) हे भूपति जोधसिंह ! तुझे कभी नहीं भूलेंगे।

[रचयिताः—औनाड़सिंह आशिया, मेंगटिया]

ठाकुर जोरावरसिंह राठौड़, गोठियाणा

दोहा

के झेलै झेला करे, किल्ला खाई कोट।
(पण) तैं झेली तुपकां तणी, चौड़े छाती चोट ॥१॥

भावार्थ:—कितने ही (वीर) किले, खाई और दुर्ग की ओट लेकर वार सहते हैं लेकिन तूने खुले सीने पर तोपों के आघात झेले हैं।

रोक न सकिया राज रा, दस हु दिसा मग हाट।
जोरो सुरग सिधावतां, वीरा हंदी वाट ॥२॥

भावार्थ:—दशों दिशाओं को राज्य-वालों ने दबा लें, लेकिन वीर पथगामी जोरावरसिंह को स्वर्ग जाने से कोई नहीं रोक सके।

जकड़्यो रह्यो न जीवतों जोरावर जंजीर।
पकड़्यो गयो न पींजरां क्रोधीलो कंठीर ॥३॥

भावार्थ:—जीते जी जोरावरसिंह कभी शृंखला बद्ध हो नहीं हुआ और न कभी वह क्रुद्ध सिंह पकड़ कर पिंजरे में रक्खा गया।

उण भोगी री भोम सूं, अलगा रह्या ऐवास।
जोयो न मिण धर जीवतां, बांबी चूहां वास ॥४॥

टिप्पणी:—गोठियाणा (कृष्णगढ़) ठा० जोरावरसिंहजी से जागीर के सम्बन्ध में राज्य का झगड़ा होगया। जोरावरसिंह न्यायपूर्ण थे और सच्चे थे किन्तु जुल्मी राज्य की शक्ति के सामने कब तक चल सकते थे ? जब राज्य ने फौज के द्वारा जागीर पर अधिकार करना चाहा तो वे अपनी सीमा पर सामने आगये और आक्रमणकर्त्ताओं से कहा कि मुझे मार कर जागीर पर कब्जा करलो। इस पर आक्रमणकारियों ने उन्हें मार डाला। इसी सम्बन्ध में संभवतः रावत सुजानसिंह ने उक्त रचना की हो।

भावार्थः—उस (भू भोगी) वीर के (जीते जी उसके) गांव से, गगन चुम्बी महल-धारी दूर ही रहे-निकट जाने की हिम्मत नहीं की। मणिधर (सर्प) के जीते जी (उसके) बिल में चूहों के बसते किसी ने नहीं देखा।

मन न छुट्यो माला लग्यो, छूट्यो मोह सरीर।
कर न छुट्यो करवाल सूं, धर न छुट्यो पगधीर ॥५॥

भावार्थः—उसने देहासक्ति छोड़ दी लेकिन माला में-भक्ति में लगा चित्त नहीं हटाया। इसी प्रकार उसका हाथ तलवार से अलग नहीं हुआ और उस धीर (वीर) का पैर भूमि से पीछे नहीं हटा।

गुण वीरां रौ गाहकी, ऊभौ रहतौ आय।
अकबर व्हेतो आज तो, कढ़तौ दाग कराय ॥६॥

भावार्थः—यदि वीरत्व के गुण का ग्राहक आज अकबर होता तो आकर खड़ा हो जाता और दाह संस्कार कराकर ही आगे बढ़ता।

नोटः—ऐसा इतिहास-प्रसिद्ध है कि चित्तौड़-दुर्ग का रक्षा भार जयमल पत्ता के कंधों पर आ पड़ा और अकबर जब किले के अन्दर प्रवेश करने लगा तब उक्त दोनों वीर······पोल पर उपस्थित मिले और लड़ने को आमादा हो गये। तब अकबर ने उनसे कहा कि शाही सेना द्वारा तुम मारे तो जाओगे ही लेकिन मैं तुम्हारी स्वामी भक्ति से प्रसन्न हूँ। अतः जो चाहो वह देने को तय्यार हूँ। इस पर उन्होंने अर्ज किया कि हमें आप से और कुछ नहीं चाहिये। मरने पर हमें जला दिया जाय-शवों की दुर्गति न हो। इस पर अकबर ने वचन दे दिया और जब वे वीर गति को प्राप्त हुए। तब अकबर ने खड़े रह कर उनका दाह संस्कार कराया और फिर आगे गया, लेखक का इस ओर संकेत है।

[रावत सुजानसिंह, भगवानपुरा]

जेठवा

सोरठा

तावड़ तड़तड़तांह, थल सांम्ही चढ़तां थकां ।
लाधौ लड़थड़तांह, जाड़ी छाया जेठवो ॥ १ ॥

भावार्थ—(मध्यान्ह की) अनल बरसती धूप में, टीबे (रेत के टीले) की तरफ चढ़ते हुए, पेड़ की गहरी छाया में (प्राणान्त करता हुआ) छटपटाता हुआ (मुझे) जेठवा मिला ॥

जिण बिन घड़ी न जाय, जमारौ किम जावसी ।
बिलखतड़ी बन माय, जोगण करगो जेठवा ॥ २ ॥

भावार्थः—जिसके बिना एक घड़ी नहीं निकल सकती थी (तेरा नाम सुनते ही पीहर में न ठहर अविलंब यहाँ आई) लेकिन अब सारा जीवन कैसे व्यतीत होगा । हे जेठवा ! (तू-मुझ) बिलखती हुई को जंगल में (ही) जोगिनी (विधवा) बना कर चल बसा ॥

ताला सजड़ जड़ेह, कूंची ले कानी हुऔ ।
आयां ही उघड़ेह, (नहँ तो)जड़िया रहसी जेठवा ॥ ३ ॥

भावार्थः—(मेरे हृदय पर अपना प्रबल आधिपत्य जमा) मजबूत ताला लगा कर, चाबी लेकर दूर हो गया-चला गया । सो हे जेठवा ! तेरे आने पर ही खुलेंगे अन्यथा जुड़े- ही रहेंगे (अर्थात्-तेरे बिना मेरे हृदय की बात कौन समझे ? तू तो चला ही गया । न तो तू आवेगा न मैं अपने अरमान किसी से कह सकूँगी ।) ॥

टिप्पणी:—इतिहासकार इस जेठवा को पोर बन्दर का राजा कहते हैं और और इसके लिये स्व० ठा० किशोरसिंह जी, बार्हस्पत्य ने कलकत्ता से निकलने वाले 'राजस्थान' में सारा वृत्तान्त लिखा था । लेकिन मैंने इसे सोनाणा (गोडवाड़) के श्री गुमानसिंहजी से दन्त-कथा के रूप में सुनी वह संक्षेप में लिख रहा हूँ:—

जग में जोड़ी दोय, सारस ने चकवा तणी।
तीजी मिलै न कोय, जोती फिरहूँ जेठवा ॥ ४ ॥

एक मारवाड़ी सेठ की विदुषी कन्या थी। वयस्क होने पर उसे विवाह के लिये कहा गया। उसने एक सौरठा का पूर्वार्ध समस्या के रूप में लिख कर पिता के पास भेजा और कहलाया कि इसे जो पूरा कर देगा उन्हीं से मैं विवाह कर लूगी सौरठे का पूर्वार्ध यह था—

घण संचै घड़ियाह. ऐरण संग अड़िया नहीं।

अस्तु! उक्त सौरठे की प्रतिलिपियाँ करा सेठ ने विश्वास पात्रों को दे कर पूर्ति करा लाने को विदा किया। वे सेठों, राजाओं और अन्य संपन्न समाज के लोगों के यहाँ गये लेकिन कोई पूर्ति न कर सका। आखिर निराश होकर उन में से एक वापस लौट रहा था तो मारवाड़ में ही मार्ग में बकरियाँ चराता हुआ खेजड़े की छाया में बैठा जेठवा चारण मिला।

पथिक ने उसी के पास छाया में बैठ विश्राम लिया, जेठवा ने उसकी निराशा भरी मुखाकृति देख इसका कारण जानना चाहा। पहले तो उसने एक ग्वाले को अपनी बड़ी बात बताना उचित नहीं समझा; किंतु अधिक बातें होने पर जब उसे जेठवा की बुद्धिमता, विद्वता का पता लगा तो उसने अपना अभिष्ट जेठवा के सामने रख दिया। जेटवा ने सौरठे का उत्तरार्ध लिख कर दे दिया और वह प्रसन्न हो रवाना हुआ— उत्तरार्ध यह था—

पय सीपां पड़ियाह, महलज मोती माँगिया ॥

सम्पूर्ण सौरठा बना:—

घण संचे घाड़ियह, ऐरण संग अड़िया नहीं।
पय सीपां पड़ियाह, महलज मोती मांगिया ॥१॥

भावार्थ:—

पूर्वार्धः—घन (लुहार का बड़ा हथौड़ा और बदल) के संचे में घड़े गये। मगर ऐरण (जिस पर रखकर सुनार-लुहार चीजें बनाया करते हैं) से अड़ाये नहीं गये अर्थात् एरण पर रखकर नहीं बनाये गये।

भावार्थः—संसार में सारस और चकवे की दो ही जोड़ी (सच्चे दंपति) हैं तीसरी तो कोई मिलने की ही नहीं है, चाहे मैं, हे जेठवा ! ढूँढती ही फिरूं (अर्थात् मैं चाहती थी कि हम तीसरी जोड़ी बने किंतु विधाता को यह मंजूर नहीं था) ॥

जल़ पीधौ जाडेह, पावासर रै पावटै ।
(अब) नानकड़े नाडेह, जीव न ढूकै जेठवा ॥ ५ ॥

भावार्थः—पावासर (जलाशय विशेष) के पावटे (घाट पर) का गहरा पानी पी लिया। अतः अब छोटे तलैया पर (पानी पीने को) हे जेठवा ! दिल ही नहीं लगता। (अर्थात् तेरे गहरे ज्ञान सागर का पय पान कर अब ऊपरी बुद्धि वाले इन संसारियों में मेरा जी नहीं लगता)।

मेदागल़ री भूख, भू पड़ियाँ भाजै नहीं।
दासां होवे दूख, जीव तल़मले जेठवा ॥ ६ ॥

उत्तरार्धः—(बदलों द्वारा स्वाति नक्षत्र में) पानी सीपों में गिरा और उनसे पैदा हुए मोती महिला ने मांगे हैं—मोती चाहती है।

जब यह पथिक सेठ के यहाँ पहुंचा तो सब बड़े प्रसन्न हुए। सेठ की विदुषी कन्या ने सारी जानकारी कर जेठवा से जाकर मिलने की इच्छा प्रकट की। सेठ ने यह स्वीकार कर समुचित प्रबंध के साथ उसे मिलने को रवाना कर दिया। विदुषी अपने कई अरमान लेकर विद्वान जेठवा के यहाँ पहुँची, लेकिन विधि विधान को यह सब मन्जूर नहीं था। अतः जब वह जेठवा के पास मध्यान्ह में पहुंची तो जेठवा को सर्प ने डस लिया था। लोग पेड़ की छाया में लिये बैठे थे, वह बेहोश था, धूप की गरमी और विष के प्रभाव से वह छटपटा रहा था और अपनी लीला समाप्त कर रहा था। यह देख विदुषी की लीला भी (कल्पना) समाप्त हो गई। नभ मण्डल में उड़ने की इच्छा रखने वाले को रसातल में डाल दिया। उस समय उसकी जो व्यथित दशा हुई उसका उसने उक्त सोरठों में वर्णन किया है।

भावार्थः—भेदार्गल (रहस्य खुलवाने) की जो क्षुधा (जिज्ञासा की तुमसे पूर्ति हुई) है वह पृथ्वी पर गिरने (मरने) पर भी अब (अन्य से) पूरी होने की नहीं है। हे जेठवा ! (ये रहस्य भरी बातें, दिल के अरमान, हृदय का मर्म किस से कहूँ ?) कहते हुए वेदना होती है—हृदय तिलमिला उठता है।

[रचियता रूपसिंह बारहठ]

कविराजा दुर्गादान, कोटा

गीत

अढ बीस सात पचपन पत्र ईख्यौं ।(वे)
सबद हिया रे बीच सिल्या ॥
वज्रप्रहार सरीखा विखमा ।
म्हांनै ऐ समचार मिल्या ॥ १ ॥

गुण आलय गाहिड़ रौ गाडौ ।
कीरत रौ लाडौ कविराज ॥
गम रा पुंज सरूप सज्जणगण ।
अमरापुर वासवियौ आज ॥ २ ॥

खारा जहर पढ्या वे आखर ।
हिय दुखसिंधु उझेल हुवौ ॥
आह उगाल कंठ अवरुधौ ।
वे चख वर वस नीर चुवौ ॥ ३ ॥

सांच कि झूट किना औ सपनौ ।
बीसासां कि न करां विसास ॥

परतख खबर पढ़ी पुन पढली ।
जो अलीक किम मानां जास ॥ ४ ॥
होणौ न थरे निदय ए तौ हरि ।
बलते हृदे कही आ वाण ॥
कविराजा खोसे करुणा कर । (म्हांरे)
ऊपर ढाय दियौ असमाण ॥ ५ ॥
हा दुरगेस ! हमैं कित हेरां !
पेखण किण ढिग करां पुकार ॥
चित व्याकुल सहसी चारणकुल ।
महा हाण थारी महियार ॥ ६ ॥

भावार्थ— अट्ठाईस जुलाई सन् १६५५ को समाचार-पत्र देखा उसमें पढ़े वे शब्द हृदय में शल्य की तरह चुभ गये। विषम वज्रप्रहार के समान हमें वह समाचार मिला। उस गुणागार, धीर गंभीर, कीर्ति-कंत कविराजा ने सज्जनों को शोकसागर में निमग्न कर आज स्वर्ग को जा बसाया ! उन अत्यंत अप्रिय अक्षरों को पढ़कर हृदय में दुःख का समुद्र उमड़ पड़ा ! मुँह से आह मात्र निकल सकी और कंठ अवरुद्ध हो गया। आँखों से अश्रु धारा बह चली। मन कहने लगा, यह सच है कि झूंठ या यह स्वप्न ही है। इस पर विश्वास करें या नहीं करें ? किन्तु जिस खबर को प्रत्यक्ष पढ़ी और फिर पढ़ी उसे असत्य भी कैसे मानें ? जलते हुए दिल ने कहा— हे हरि ! तुम्हें इतना तो निर्दय नहीं होना था। हे करुणा कर ! हम से कवि राजा को छीन कर तूने हम पर आसमान ढहा दिया है। हा ! दुर्गादान ! तुम्हें अब कहां ढूंढें ? तुम्हें देखने को अब किसके पास पुकार करें ? हा ! तुम्हारे निधन की इस महा हानी को व्याकुल चित्त चारण जाति अनन्त काल तक सहती रहेगी।

गीत (२)

इल सत रौ दुरग अथमायौ ।
चित म्हारौ घायौ कर चोट ॥
लहरी दया दया नहँ लायौ ।
खगपत चढण करी वड खोट ॥ १ ॥

देसभगत विद्वान दयानिध ।
भलपण रौ सागर कुलभूप ॥
कीधन पाय लियौ करुणाकर ।
रे हरि विगाठ जात रौ रूप ॥ २ ॥

घण गंभीर अनूपम गाढम ।
मृदुभाखी राजा महियार ॥
जाण अजाण वणे जोखमियौ ।
कीधौ अकंत घणौ करतार ॥ ३ ॥

महा उदार मोट मन महपत ।
कायब कंत अटल कुल काण ॥
असमय में कविराज उठायर । (तैं)
भूल करी भारी भगवाण ॥ ४ ॥

जिता सास जीसां की जोरी ।
सहसां औ सांसौ धर सीस ॥
कहसां विलख न्याय नहँ कीधौ ।
अनरथ वड कीधौ जग ईस ॥ ५ ॥

भावार्थः—हा ! आज सत्य का दुर्ग ढहा दिया। उसने करारी चोट से मेरा चित्त क्षतविक्षत कर दिया। दयानिधि होकर भी उसको दया नहीं आई। उस गरुड़ासन ने बहुत ही बुरा किया। वह कुल भूप परमदयालु, भलेपन का समुद्र, विद्वान और सच्चा देशभक्त था। ऐसे उस जाति के गौरव स्वरूप को विनष्ट करके हे हरि ! तूने क्या धन पालिया ? वह महियारिया राजा अत्यंत गंभीर, अनुपम दृढ़ता वाला और अत्यंत मधुरभाषी था। यह सब कुछ जानते हुए भी अनजान बन कर तूने उसे इस लोक से उठा लिया ! हे करतार ! तूने बहुत अनुचित किया। वह महीपति अपनी कुलकान निभाने में अटल था। वह काव्य-मर्मज्ञ, विशाल हृदय और अत्यंत उदार था। हे भगवन् ! असमय में ही ऐसे कविराजा को उठा कर तूने भारी भूल की। जितने श्वास बाकी हैं, जीना ही पड़ेगा और तेरे दिये हुए इस दुःख को सिर पर ले सहते रहेंगे। जोर ही क्या किन्तु बिलख बिलख कर यह तो कहते ही रहेंगे कि हे जगदीश, तूने न्याय नहीं किया, बड़ा अनर्थ किया।

गीत (३)

परमातम परम विस्व रा पोखण।
दौड़ दियौ किम धाड़ो ॥
दुनिया मांझ अठे ही दीठौ। (तनैं)
ओ ही गेह उघाड़ौ ॥ १ ॥

कोहनूर खोसे कविराजा।
बीदग निधन बणाया ॥
की अपराध उंचित लख कीधो।
म्हां घर लूटण माया ॥ २ ॥

रांकां तणौ रतन हे राघव।

जोग जतन थौ जाभा ॥ (जींनैं)
धोळै दिन लीधौ दे धाड़ौ।
करुणाकर किण काजा ॥ ३ ॥
म्हां सरवस होतौ महियारयौ।
(वींरी) रखवाली रखणी थी ॥
देसी नथी होय निरदय हरि।
इण पर धाड़ अचींती ॥ ४ ॥
समरथ सबळ तनैं म्हैं सांई।
परम निबळ किम पाळां ॥
ले दुरगेस भलप नहँ लीधी। (आ)
कूके अवस कहांला ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे परम ! हे परमात्मन् ! तू तो विश्व का पोषक है । तूने दौड़ कर अचानक यह डाका कैसे डाला ? क्या दुनियां में यही घर तुझे खुलानजर आया ? चारणों के कोहनूर हीरे सदृश कविराजा को उन से छीन कर उन को तूने निर्धन बना दिया। किस अपराध से उचित समझ कर हमारी इस सम्पदा को तूने हरण कर ली ? हे राघव ! वह रंकों का रत्न तो बहुत ही यत्न के योग्य था। हे करुणाकर ! तूने दिन दहाड़े डाका डाल कर उसे क्यों ले लिया ? वह महियारिया तो हमारा सर्वस्व था, उसकी तो तुझे रक्षा करनी थी। हे हरि ! उस पर इस प्रकार निर्दय हो कर अकल्पित प्रहार तुझे नहीं करना था। हे स्वामी। तू सबल और सर्व समर्थ है। तू जो कुछ भी करे उससे, हम परम निर्बल तुझे कैसे रोक सकते हैं ? किन्तु इतना तो चिल्ला चिल्ला कर अवश्य कहेंगे कि दुर्गादान को हम से छीन कर तूने कोई भलाई नहीं ली।

(रचयिता—चंडीदान सांदू, हीलोड़ी—मारवाड़)

दोहा

आप उठाता कष्ट पर, करता पर उपकार ॥
गया स्वर्ग कविराज वह, दानी परम उदार ॥ १ ॥

सुज्ञ, भक्त, सज्जन, सुहृद, विनयशील, विद्वान ॥
गुन–गाहक, नीति–निपुण, रहा न दुरगादान ॥ २ ॥

उच्च भाव अरु कामना, उच्च प्रेम व्यवहार ॥
उच्च हृदय अब ना रहा, कविराजा अनुहार ॥ ३ ॥

आश्रय दे प्रतिपालतो, करतो फिर सनमान ॥
सेवक को सम मित्र के, रखतो दुरगा दान ॥ ४ ॥

भावार्थः—आप स्वयं तकलीफ़ सहन करके भी जो पर हित में रत रहता था, वह दरिया दिल कविराजा (दुर्गादान) स्वर्ग चला गया ॥

ज्ञानी, भक्त, सज्जन, (सब का) मित्र, शिष्टाचारी, विद्वान, गुणों का कद्र दान और (जो) नीति में कुशल था, वह दुर्गादान (आज संसार में) नहीं रहा ॥

विशाल भावना और कामना, विशाल स्नेह संबंध रखने वाला तथा विशाल हृदय वाला (राजा के अनुरूप) कविराजा अब नहीं रहा ॥

अपने सेवक को वह आश्रय देता था। इज्जत करता था और मित्र के बराबर समझता था (ऐसा वह गुणज्ञ था) ॥

[रचयिताः—ठा० डूंगरसिंह भाटी]

रावळ दुर्जनसाल, जैसलमेर

गीत

भालौ जुध जूट करालौ भाटी ।
तरभालौ धुरियौ तिणवार ॥
लार फिरै पालौ सिर लेवा ।
भगवत्ती वालौ भरतार ॥ १ ॥

हात चलाय दिखण दळ हणिया।
ऊकणियां खत्रवट अणपार ॥
भणिया दै माथौ भूतेसर ।
दुरजणिया मोटा दातार ॥ २ ॥

काचै मतै गया उड़ कायर ।
आरण वाचै पाठ अजेव ॥
सुत खूमाण लड़ै दिल साचै ।
सिर जाचै नाचै सिवदेव ॥ ३ ॥

तेगां दळ बादळ तड़िता सी ।
बरखा सी सर सोक वज ॥
एकण पगवाण अविनासी ।
कासी वासी कमळ कज ॥ ४ ॥

खर खर पड़ै वाढरा खागां ।
वदै महेस चाढरा बात ॥
अब तो कोट गाढ रा आपौ ।
धू गया मांढ रा छात ॥ ५ ॥

भेले कवण जोध अर भटका ।
संकर लटका करै सत ॥
हर अटका जोड़ै हुय जासी ॥
आसी किण बटका अरथ ॥ ६ ॥

फिर फिर भगत कहै हर फोड़ा ।
कहिया थोड़ा मूझ कर ॥
दे थाकौ घोड़ा संग दौड़ा ॥
खोड़ा लै म्हारी खबर ॥ ७ ॥

संभू नाथ कह्यो सौ बेरा ।
भला होय तेरा अण भंग ॥
मलियौ माल सुमेरा माफक ।
औ जेसलमेरा उतबंग ॥ ८ ॥

वसियौ जाय हंस वैकुंठां ।
पूगो दस दसियौ अणपार ॥
रज रज सीस हुवौ रणरसियौ ॥
ताली दे हसियौ त्रिपुरार ॥ ६ ॥

भावार्थः— जिस समय नागारे वजे, युद्ध में उस विकराल भाटी का स्वरूप देखने ही लायक था। उसका सिर प्राप्त करने की इच्छा से पार्वती-पति उसके पीछे पीछे पैदल ही फिर रहे थे। जब उसने अपार क्षात्रत्व के उफान में दक्षिणी सेनाओं का अद्भुत हस्तलाघव से संहार किया तो भूतेश्वर बोल उठे, ऐ बड़े दानी दुर्जनसाल ! तेरा मस्तक मुझे दे दे। उस युद्ध में कच्चे दिल के कायर लोग थे, वे पलायन कर गये।

किन्तु खुम्माणसिंह का अजेय पुत्र युद्ध कौशल का पाठ पढ़ाता हुआ सच्चे दिल से संग्राम कर रहा था और शिव। देव अपने ताण्डव के पैर उठाते हुए उसके सिर की याचना कर रहे थे। उस रणक्षेत्र में सेना रूपी मेघों में तड़िता स्वरूप तेगें चमक रही थी और वर्षा की सी वाणों की बौछार बज रही थी। वहां वह अविनाशी काशी-वासी भी उसके मस्तक के लिये एक पग-आतुर हो रहा था। तलवारों की धारों से जब उस वीर का शिर खिर खिर कट गिरने लगा तो महेश कहते हैं, अपने गौरव को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाले हे दृढ़ता के दुर्ग, माढ के स्वामी ! तुम्हारा सिर बहुत ही क्षतविक्षत हो गया है. अबतो उसे देदो। श्री शंकर शतशः प्रणिपात कर कहते हैं, कौन ऐसा योद्धा है जो इस प्रकार शत्रुओं के प्रहारों को झेल सके ! अब तेरा यह सिर जगन्नाथ के अटके के समान फट पड़ेगा; तब तू ही बता वे टुकड़े किस काम में आवेंगे ? महादेव कहते हैं, मैं तेरे घोड़े के साथ दौड़ते दौड़ते थक गया हूँ, मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। ऐ खोड़े ! थोड़ा मेरा भी कहा मान ले और मेरी सुधि ले ले। सैंकड़ों बार शंभू ने उसे कहा, ओ जैसलमेरा ! तेरा यह उत्तमांग मेरी माला का सुमेरु होने योग्य है, इसे मुझे दे दे।

किन्तु उसके शरीर के समान ही मस्तक भी तिल तिल हो गया और वह वैकुण्ठवासी होगया। उसका अपार यश सर्वत्र छा गया। इस अद्भुत वीर-चमत्कार को देख कर निराश त्रिपुरारि भी ताली बजा कर अट्टहास करते हुए कैलाश की ओर प्रस्थान कर गये।

[रचयिताः— सांदू-हंपाजी]

देवनाथ आयस

गीत

जादूकुल मांय हुवौ वड जोगी।
आदनाथ तणौ अवतार॥

मारण हार मुआ जग मांहे।
देवो नौज मरै दातार ॥ १ ॥

आयस हतौ जधोपुर आडौ।
कीरत लाडौ मला कैमास ॥
न मुवौ अजे दूसरो नाडौ।
ऊपर गाढौ जस वास ॥ २ ॥

देह वदल कीधौ देखालौ।
मालौ जस दनकर साभाय ॥
ऊ अवतार जलंधर वालौ।
मुदरालौ न मुवौ जग मांय ॥ ३ ॥

रहियो जितै विभौ सुरपुर रौ।
सामठियो तद हेकण सोक ॥
ईदां साथ वचन रै आंटै।
सुतन महेस गयौ सुर लोक ॥ ४ ॥

भावार्थ:—यदुकुल में वह महान् योगी आदिनाथ का अवतार हो गया। उसे मारने वाले ही संसार में मरे हैं, दानी देवनाथ मर नहीं सकता। वह कीर्तिकन्त आयस (नाथ संप्रदाय का प्रमुख) विचार परामर्श में कैमास के समान था। वह जोधपुर का रक्षक था। वह दूसरा नाडा आज भी मरा नहीं है, उसका यश सौरभ पृथ्वी पर फैला हुआ है। उसने तो देह परिवर्तन का दिखावा मात्र किया है। वह जालंधरनाथ का मुद्राधारी अवतार मरा नहीं है। उसका यश सूर्य के समान सर्वत्र प्रकाशमान है।

वह जब तक पृथ्वी पर रहा, स्वर्ग का सा वैभव उसके साथ रहा और सिमटा भी तो एक ही साथ। ईंदा के साथ केवल बोल चाल हो जाने के परिणाम स्वरूप वह महेश-सुत स्वर्ग लोक चला गया।

[रचयिता—अज्ञात]

ठा० दौलतसिंह, अथुंणा

गीत

अवचल क्रन भोज इला रै ऊपर।
सिवपुर राव अमर सुरताण॥
अरथूणै दौलतसी अवचल।
वधिया समँद परै वाखाण॥ १॥

वढ हथ अमर कोटड़ै वाधौ।
रह्यौ अचल भीमाजल राण॥
रवि ससि हर जेते रायजादो।
सुतन खुसाल अमर चहुवाण॥ २॥

लायक अमर फुलाखी लाखौ।
अवचल पीछत वीक अजे॥
नहचल नाम कियौ नाहूलै।
वाजा जस नव खंड वजै॥ ३॥

संभरियौ पूगौ हर सरणौ।
वसुधा सरै वजाड़े वार॥
मरगा सूम हयोरा माठा।
दोलौ नीज मरै दातार॥ ४॥

भावार्थः—जिस प्रकार पृथ्वी पर कर्ण और भोज अपनी कीर्ति के कारण अमर हैं, जिस प्रकार शिवपुर का राव सुरताण अमर है उसी प्रकार जिसकी कीर्ति समुद्र पार तक फैली है वह अरथूणा का स्वामी दौलतसिंह भी अमर है। जिस पर प्रकार कोटड़ा का वाघा राठौड़ अपनी दानशीलता के कारण अमर है, जिस प्रकार महाराणा भीमसिंह अमर है उसी प्रकार चन्द्र सूर्य हैं तब तक खुशालसिंह का चहुआण राजकुमार अमर है। आज भी परीक्षित और विक्रम एवं नाडोल का स्वामी अपने सर्वत्र यश विस्तार के कारण अमर हैं उसी प्रकार अपने समय को पृथ्वी पर उत्तम कहला कर जो चहुवाण हरिशरण हो गया वह दानी दौलतसिंह मर ही कैसे सकता है। मरे वे कृपण हैं जिनकी मुट्ठी सदा बँधी हुई रही।

[रचयिताः-अज्ञात]

महाराजा पद्मसिंह बीकानेर

[औरङ्गजेब के लिये कोंकण में जिन्होंने वीरगति प्राप्त की उनके संबंध में]

गीत

रणदूलह दिखणघड़ा रसलूधो।
बिजड़ां थयो स लूथवथ॥
ढौलै चँवर अछर रथ ढावै।
गजा बींद चढै न रथ॥ १॥

लाडी परघड़ समर लोहड़ै।
मारू रसलूधो रसमाण॥
परि विवाण धरै आगल पिण।
वर न धरै पग पदम विवाण॥ २॥

विढण वेरहर फौज वीनणी ।
रातौ करनसुत रूकरस ॥
वाहण परठै अछर सूर वर ।
वाहण न चढै नेह वस ॥ ३ ॥

सत्रघड़ दुलहण माण सँपूरण ।
सुरपुर दिस सोव्रन सदन ॥
वणिया चढ हालियौ विवाणां ।
पदमण अपछर वर पदम ॥ ४ ॥

भावार्थः—दक्षिणी सेना रूपी दुलहिन का रसलुब्ध रणदूल्हा तलवारों के द्वारा उससे गाढालिंगन करने लगा। इधर अप्सरा उस रसिक पर मुग्ध हो चँवर दुलाती है और अपना रथ उसकी सवारी के लिये रोकती है। किंतु वह वर राजा रथ पर सवार नहीं होता, वह मारू शत्रु सेना रूपी लाडी से युद्धायुधों के द्वारा रसकेलि कर रहा है और परी उसके सामने विमान पेश करती है। किन्तु वह वर राजा पद्मसिंह विमान पर पैर नहीं देता, वह कर्णसिंह का पुत्र रिपु अनीकिनी रूपी वीनणी के मर्दन के लिये असि-रस में रत है और अप्सरा उस वीरश्रेष्ठ के 'वाहन को पकड़ लेती है'। किन्तु वह अपनी रिपुचमू दुलहिन के रस में ऐसा पगा है कि अप्सरा के वाहन पर सवार नहीं होता।

अन्ततः जब उस प्रिय दुलहिन का संपूर्णतया उपभोग कर चुका तो वह वर राजा पद्मसिंह अप्सरा पद्मनी को वरण कर विमान में बैठ स्वर्ग के कनक भवनों की ओर प्रस्थानित हो गया।

[रचयिताः—अज्ञात]

ठाकुर प्रतापसिंह डिग्गी

सोरठा

तूटी रीति तमाम, छत्रीध्रम वाली छिती।
व्रन चारण विसराम, अरक पतौ आथम्मियौ ॥ १ ॥

भावार्थः—पृथ्वी पर क्षात्रधर्म की सब परम्परायें समाप्त होगईं। हा! चारण जाति का विश्रामस्थल, अर्कोपम प्रतापसिंह अस्त हो गया।

सल्हा बहादुर साब, प्रबँध चारणां पूछसी।
जद अजमेर जबाब, तो विण कुण देसी पता ॥ २ ॥

भावार्थः—जब अजमेर में चारणों के प्रबंध संबधी कोई सलाह साहब बहादुर पूछेंगे तो, हे प्रताप सिंह! तेरे बिना कौन जबाब देगा?

भूपत बदले भेक, अवर केक मग आदरै।
कुल ध्रम रीत विवेक, तो विण (कुण) जाणै पता ॥ ३ ॥

भावार्थः—कई राजा लोग वेशभूषा बदल कर विपथगामी हो रहे हैं। अपने कुलधर्म की रीतियों का विवेक, हे प्रताप सिंह! तेरे विना अब किस को है?

कृपणां वसू कितेक, एक वणीकपण धारियौ।
टणका पणरी टेक, तो विण कुण राखै पता ॥ ४ ॥

भावार्थः—संसार में कई कृपण क्षत्रियों ने केवल बनियापन स्वीकार कर लिया है। हे प्रतापसिंह तेरे बिना अब बहादुरी का बाना कौन रक्खे?

कलजुग देखि कितह, नृपति छता सिर नम्मिया।
तो विण ऊंच मताह, पता कवण राखै प्रथी ॥ ५ ॥

भावार्थः—नृपति होते हुए भी कलियुग को देख कर कइयों ने अपने सिर झुका लिये हैं। हे प्रतापसिंह ! तेरे विना अब ऊंचे इरादे कौन रक्खेगा ?

चूकि किता कुल चाल, अदता मन आणै अँजस ।
पता धरम प्रतिपाल, कवण छता तो विण करै ॥ ६ ॥

भावार्थः—अपने कुलाचार से भ्रष्ट होकर भी कई कृपण मन में घमंड करते हैं। हे प्रताप सिंह ! तेरे विना अब धर्म की रक्षा कौन करे ?

वीसरि कुलवट वाट,कलू झाट लगतां किता ।
घट रजवट चौ वाट, तो विण कुण राखै पता ॥ ७ ॥

भावार्थः—कलियुग की प्रचण्ड झपट लगते ही कइयों ने अपनी कुलमर्यादा को भुला दिया है। अब तेरे विना हे प्रतापसिंह ! हृदय में कौन क्षात्राभिमान को रक्खेगा ?

छिति अब नासति छाय, आज कलू कीधौ अमल ।
जस गाहक जग माँय, तो विण कुण दूजौ पता ॥ ८ ॥

भावार्थः—पृथ्वी पर नास्तिकता छाती जा रही है और कलियुग ने सर्वत्र अधिकार जमा लिया है। ऐसे समय में हे प्रतापसिंह ! तेरे विना यश ग्राहक दूसरा कौन होगा ?

तौर कंपनी तेज, मुकर थयौ अँगरेज मत ।
जद रजवाड़ रवेज, तो विण कुण राखै पता ॥ ९ ॥

भावार्थः—कम्पनी के प्रताप प्रभाव से सभी अंगरेजों के मत के अनुयायी हो गये हैं। हे प्रतापसिंह। अब रजवाड़ों के रीति-रिवाज को कौन कायम रक्खेगा ?

बीदग बरन बुलार, जस रूपग सुण रीझतौ ।
आखर कदर उदार, तो विण कुण करवै पता ॥१०॥

भावार्थः—चारण समाज को बुलाकर प्रसन्न हो कर तू काव्य सुनता और रीझा करता था । अब हे उदार प्रतापसिंह ! तेरे बिना कविता की कद्र कौन करेगा ?

ओलख मिसलि उथाप, जो अन्याय हौतो जटै ।
अब सांचौ इनसाफ, तो विण कुण करवै पता ॥११॥

भावार्थः—यदि कहीं अन्याय होता तो, मिसल देखकर तू उसे बदल देता था । अब, हे प्रतापसिंह ! तेरे बिना सच्चा न्याय कौन करे ?

तंत सला मझ तोय, पूछै नृप जयपुर पता ।
ऊथप सकै न कोय, थापै तूं सोइ थपै ॥१२॥

भावार्थः—जयपुर नरेश, हे प्रतापसिंह ! तुझे ही विचार परामर्श का सार पूछा करते थे । जो तू कहता उसे कोई बदल नहीं सकता था । जो निर्णय तू कर देता वही स्थिर रहता था ।

ईस्वर करी अजोग, तो वियोग वाली पता ।
उर दुख थयौ अयोग, भूलां किम भीमेण रा ॥१३॥

भावार्थः—तेरे वियोग की यह दुर्घटना ईश्वर ने बहुत ही अनुचित की है । हृदय संताप से भरा है । हे भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

चारण वरण निसोच, तो पाछै रह छौ पता ।
आवै मन आलोच, भूलां किम भीमेण रा ॥१४॥

भावार्थः—तेरे भरोसे चारण समाज निश्चिंत रहा करता था। अब हृदय में बार बार उद्विग्नता होती है। भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

थिर ढूंढाहड़ थंभ, अनम समोवड़ नम्मिया।
अधपतियां ओठम्म, भूलां किम भीमेण रा ॥१५॥

भावार्थः—तू ढूंढाड़ राज्य का स्तंभ था। तूने अनम्र समकक्षों को विनम्र बना दिये थे। तू अधिपतियों का सहायक था। भीमसिंहात्मज तुझे कैसे भूलें ?

राखण कुल मरजाद, अधपतियां ढांकण अडिग।
आवै बर बर याद, भूलां किम भीमेण रा ॥१६॥

भावार्थः—तू कुल मर्यादा का रक्षक था और अधिपतियों का अडिग रक्षक था। तू बार बार याद आता है, भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

गुण रा बिया गणेस, कवी सरण राखे किता।
पता जिका अपणेस, भूलां किम भीमेण रा ॥१७॥

भावार्थः—गुणों में तू दूसरा गणेश ही था, तूने कई कवियों को आश्रय दिया। तेरा जो वह ममत्व था उसे, हे भीमसिंहात्मज प्रतापसिंह ! कैसे भूलें ?

तन मन धन हितसूंह, पात सरण राखे पता।
तो सूरत चित सूंह, भूलां किम भिमेण रा ॥१८॥

भावार्थः—तन मन धन से हित साधन कर तू चारणों को अपने पास रक्खा करता था। तेरी उस सूरत को हे भीमसिंहात्मज ! चित्त से कैसे भुलावें !

अड़ती अबखी आर, पख पातां करतौ पता।
आपो बारम्बार, भूलां किम भीमेणरा ॥१९॥

भावार्थः—जब कभी कोई मुश्किल आ पड़ती, तू चारणों का पक्ष लिया करता था। तुझे अनेकानेक धन्यवाद। भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

ईहग सरण अयेस, माफ कराई मातमी।
लख मुख दाद लियेस, भूलां किम भीमेण रा ॥२०॥

भावार्थः—किसी चारण के शरण आने पर तूने उसकी मातमी (कर विशेष) माफ करवा दी थी। इसके उपलक्ष्य में अगणित मुखों से तूने वाह-वाही ली थी। भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

आदू बिरद उजाल, ढाल धरा ढूंढाड़ री।
पता पांगलां पाल, भूलां किम भीमेण रा ॥२१॥

भावार्थः—तू अपने परम्परागत बिरुदों का उज्वल करने वाला था। तू ढूंढाड़ की ढाल था और तू पंगुओं-निर्बलों का पोषक था। हे भीमसिंहात्मज प्रतापसिंह ! तुझे कैसे भूल सकते हैं ?

हद मद भर हाथांह, पातां प्याला पावतौ।
वड हित री वातांह, भूला किम भिमेण रा ॥२२॥

भावार्थः—अपने हाथों से मदिरा के प्याले भर भर कर प्रेमपूर्वक तू चारणों को पिलाता रहता था। तेरे प्रेम की वे बातें, हे भीमसिंहात्मज कैसे भूलें ?

हौ कुल उजवालौह, रखवालौ ब्रन रैणवां।
अदव गुमर गालौह, भूलां किम भीमेण रा ॥२३॥

भावार्थः—तू अपने कुल को उज्वल करने वाला था, तू चारणों का रक्षक था और शत्रुओं का घमंड उतारने वाला था। भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूल सकते हैं ?

लेख सनातन लार, तूं अन चारण तोसतौ।
धणी डिगी छत्रधार, भूलां किम भीमेण रा ॥२४॥

भावार्थः—अपनी कुल परम्परा के अनुसार तू चारण समाज को सन्तुष्ट रखता था। हे डिग्गी के छत्रधारी स्वामी, भीमसिंहात्मज, तुझे कैसे भूल सकते हैं ?

तदि कोई पड़तौ ताप, तूं प्रताप करतौ मदति।
धणी डिगी धणियाप, भूलां किम भीमेण रा ॥२५॥

भावार्थः—जब कभी कोई आपत्ति आती है, हे प्रतापसिंह ! तू सहायता करता था। हे डिग्गी के स्वामी भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

मचियौ सोच मथाण, पचियौ नहँ मन प्राजलै।
गवण सुरंग खांगांण, भूलां किम भीमेण रा ॥२६॥

भावार्थः—हे खंगारोत ! तेरे स्वर्गारोहण से सर्वत्र शोक छा गया है। तेरा वियोग सहन नहीं हो रहा है। हृदय जलता ही रहता है। हे भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

भूपतियां साभाव, तो में सह मिलता तिता।
आमेरा उमराव, भूलां किम भीमेण रा ॥२७॥

भावार्थः—राजाओं के जो सहज स्वभाव होते हैं वे सभी तुझ में मिलते थे। हे आमेर के उमराव, भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

जमीं अदव जतराह, रीत कुटँब कतरा तजै।
रखणा कीरतराह, भूलां किम भीमेण रा ॥२८॥

भावार्थः—संसार में जितने शिष्टाचार हैं और जो कुल रीतियां हैं। उन्हें कितने ही छोड़ रहे हैं। परन्तु तू तो कीर्ति का रक्षक था, भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

खूबी अपजस खेण, देण दाग अलवर दुरग।
उदकी धरा अलेण, नृपति लेण सिवदान कर ॥२६॥

भावार्थः—उदक दी हुई भूमि अग्राह्य होने पर भी अलवर की गद्दी को कलंक लगाने के लिये और अपने अपयश के विस्तार के लिये महाराजा शिवदानसिंह ने उसे ले लेने को मन ललचाया।

पति अलवर करि कोप, रामनाथ कवि रोधियौ।
पग अंगद ज्यूं रोप, छत्रधर पता छुडावियौ ॥३०॥

भावार्थः—अलवर के स्वामी ने कुपित होकर कविवर रामनाथ को कैद कर दिया, तब अङ्गद के समान पग रोप कर, हे छत्रधारी प्रतापसिंह ! तूने उसे छुड़ा दिया था।

निज मो नानानेह, तैं सरणौ राख्यौ पता।
जोय रीत जानेह, भूलां किम भीमेण रा ॥३१॥

भावार्थः—स्वयं मेरे नाना को, हे प्रतापसिंह ! तूने शरण दी थी। तेरी उस प्रीति-रीति को देख कर हे भीमसिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

और किता आसान, तैं सिर कीधा ताकवां।
भूपति खांगां भाण, भूलां किम भीमेण रा ॥३२॥

भावार्थः—और भी कई अहसान तूने चारणों पर किये थे। हे खङ्गारोतों के सूर्य भीमसिंहात्मज ! उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं ?

छौ सरणू छत्रधार, अवखी मांहि उबारतौ।
वो उणिहार उदार, भूलां किम भीमेण रा ॥३३॥

भावार्थः—तू विपत्ति में से निकाल लेने वाला था, तूं शरणागत वत्सल था। हे छत्रधारी भीम सिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें?

साराक गुण मढि याह, कद कीमत राखै किता।
वारस अणपढियाह, भूलां किम भीमेण रा ॥३४॥

भावार्थः—सुयोग्य गुण मंडित जनों को तो उनका मूल्य समझ-बूझ कर कितने ही अपने पास रखते हैं। किंतु तू तो अपढ़ों का सहायक था। भीमसिंहात्मज तुझे कैसे भूलें ?

मौज ब्रवण रा माग, राखण रीत अनादिरा।
गुणदधि पता अथाग, भूलां किम भीमेण रा ॥३५॥

भावार्थः—दान देने के मार्ग की अनादि रीति को रखने वाले हे अथाह गुणोदधि भीमसिंहात्मज तुझे कैसे भूलें ?

सरणा कवि सारांह, वारां इण वीकम विया।
तुररा सुदतारांह, भूलां किम भीमेण रा ॥३६॥

भावार्थः—सब कवियों का तू शरण स्थान था इस जमाने में तू दूसरा विक्रम ही था। हे वदान्य श्रेष्ठ भीम सिंहात्मज ! तुझे कैसे भूलें ?

ऊधमणा अथराह, राखण जस कथरा रिधू।
अदव माण मथराह, भूलां किम भीमेण रा ॥३७॥

भावार्थः—तू द्रव्य को खुले हाथ बांटने वाला था, शत्रुओं का मान मर्दन करने वाला था और अपनी कीर्ति-कथा रख जाने वाला था। हे भीम सिंहात्मज तूझे कैसे भूल सकते हैं ?

पेट ज भरण उपाय, करस्यां म्हैं जग में किता।
जिय सूं रंज न जाय, तो वियोग वालौ पता ॥३८॥

भावार्थः—जीवन निर्वाह के लिये संसार में हम कई उद्योग उपाय करेंगे, परन्तु हे प्रताप ! तेरे वियोग का दुःख तो कभी दिल से दूर न होगा ।

[रचयिताः-अंबादान रतनू]

हाडा प्रथीसिंहजी

गीत

सभै उम्मरां है निहंग माग खंचै सूर ।
धोम जागौ अराबां तंवरां फैल धींग ॥
अंबरां बिलागौ धू किसोर महाराव आगै ।
सार धारां इसी रीत बागौ प्रथीसींग ॥ १ ॥

घोर मोर तोपां गाज अग्राज असाडी घटा ।
चाढौ नीर कुळा बाढौ खळां सेन चाव ॥
जेठी बंधु आगळै कणेठी भार झेल जाडौ ।
हुवौ लाडौ कुंवारी घड़ा रौ हाडौ राव ॥ २ ॥

उसांठके खाग खापां पाटकै पै अचाळा वाळौ ।
है नाटकै वीराण जलाला वाळौ हाक ॥
बीज चखां भाटकै थाटकै सीस झाळां वाळौ ।
उमेद बिलाला वाळौ झाट कै एराक ॥ ३ ॥

रंगी साज नारंगी निहंगी भुजा लाग रोळै ।
भंड़गी अढंगी रिमां चौरंगी भलेव ॥
अंगी रोस बे बे टूक फिरंगी करंतौ आयौ ।
जंगी कारखाना माथै उनंगी जनेव ॥ ४ ॥

काज माली कमाली उताली फिरै माहाकाली।
नचै आली जाली बीर बैताली निसंक ॥
ताली बाज अराबां साबात जाली नराताली।
लाथड़ै प्रजाली जाणैहेके साथ लंक ॥ ५ ॥

सारां झट्टै कट्टै त्राण तांगड़ा आंगड़ा सूधां।
मारू बोल जांगड़ा छछोहा मार मार ॥
वेवड़ा तेवड़ा घोड़ा समाज साल······।
सांगड़ा घमोड़ा बाज रांघड़ा सुमार ॥ ६ ॥

सभै तेग खुरा भड़ां सनूरा त्रहक्कै तूरां।
चौरंगां करूरां घड़ा श्रोण पूरां चाल ॥
संभरी पीथला सेत वरंगा करंतै सूरां।
नेतबंध करी हूरां बारंगां निहाल ॥ ७ ॥

ताखा नीर ऊगती मौसरां कुलां चाढै तूं ही।
नेतबंध गाडै तूं ही भंडा धू नगेन ॥
किसोर नूं काढै तूं ही सावतौ पहाड़ काल।
सारां वढै बाढै तूं ही जला बोल सेन ॥ ८ ॥

रूकां टूक टूक हुवौ माण नूं तमासै रीधौ।
राम धाम पूगौ तूं विवाणां ठेल रंभ।
महाराण पारखा आणतां नाखांणतां मुखे।
भरोसो जाणता जसी कीधी जैत खंभ ॥ ६ ॥

रत्तां चंडी थपाई चखाई खाग अंगरेजा।
उभाये उमाई वरत्ताई थणी आण ॥
भाई वाले भार सेनापती तेग गही भुजां।
ऊजली दिखाई काला वढंतै आराण ॥१०॥

नगारा वाजतां धारां झलेगौ टलेगौ नथी।
छलेगौ अच्छरां नारां झलेगौ न छोत ॥
पाड़ वारा नीकलेगौ मारे के हजारां पीथौ।
सारां टूक टूक होय मिलेगौ साजोत ॥११॥

दोहा

टामँक रजपूती तणा, रुड़ता हाडा राण।
साच किया पीथल-सको, ऊकलतां आराण ॥ १ ॥

टल गाडा हाडा अटल, हाडां कुल हट हेक।
जीव देह छांडै जितै, डुके न छांडै टेक ॥ २ ॥

पड़ नहँ भागौ पीथला, घट भागौ खग घाव।
तैं जाडा अमलां तणा, रंग छौ हाडा राव ॥ ३ ॥

जीभ उपाड़ै कुण जठै, एसक कँध अंगरेज।
पाण उपाड़ै पीथला, तूं ही रजवट तेज ॥ ४ ॥

भाई कोड़ धारो भुजां, भाई वालौ भार।
कीज्यो ज्यूं पीथल कियौ, वणतां विखमी वार ॥ ५ ॥

दल लाडा लड़तां दलां, आडाखँडां अपार।
पीथल साडा आपनै, जाडा रँग जोधार ॥ ६ ॥

भावार्थः—आकाश मार्ग में सूर्य ने अपने रथ की बाग खींचली, (तोपों) अरावों के धुँए से घोर अन्धकार छागया। ऐसे विकट समय में महाराव किशोरसिंह के आगे तलवारों से युद्ध करते हुए प्रथीसिंह का सिर मानों आसमान से जा लगा, जिस समय आषाढी मेघ घटा के समान तोपों का घोर गर्जन हो रहा था। वह शत्रु संहार का अनुरागी, निज कुल को अधिक गौरवशाली बनाने वाला कनिष्ठ भ्राता हाडा राव अपने ज्येष्ठ भ्राता के आगे संग्राम का गुरुतर भार लेकर उस सेना कुमारिका का दूल्हा बना। उस वीर की आंखों में बिजलियाँ चमक रही हैं और शीश से मानों ज्वालायें निकल रही हैं। वह योद्धा अपना अश्व इधर उधर फेंक रहा है और वह निश्चल कदम वाला बिलाला उम्मेदसिंह का पुत्र म्यान पटक कर तलवार चला रहा है। वह सुभटोचित अनुपम पौरुष दिखाता हुआ आकाश को स्पर्श करती सी अपने भुजाओं से चारों ओर शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर रहा है। वह क्रोधोन्मत्त फिरंगियों के दो दो टुकड़े करता हुआ जंगी कारखाने पर नंगी तलवार लिये आ पहुँचा। उस समय युद्ध में महादेव की माला के सुमेरु की इच्छा से महाकाली उतावली फिर रही है और उसके इर्द गिर्द वीर वैताल निःशंक नृत्य कर रहे हैं। इशारा होते ही अरावों की असंख्य ज्वालायें उठती हैं, उनसे ऐसा भास होता है कि मानो हनुमान ने एक दम लंका दहन कर दिया है। तलवारों के झटके से योद्धाओं के कवच शरीर सहित कट रहे हैं। जांगड़ (ढोली) मारू राग अलाप रहे हैं और घावों से छके शूर मार मार की ध्वनि कर रहे हैं। घोड़ों के समूह कभी इधर, कभी उधर बढ़ रहे हैं और भालों के बेशुमार वार रंघड़ कर रहे हैं। तेजस्वी सुभटों की कृपाणें सवारों को काट कर घोड़ों के खुरों तक पहुँच रही हैं, युद्ध वाद्यों का घोर निनाद हो रहा है और हाथ पांव कटे घायलों के घावों से जो सेना में जोरों से रक्त बह निकला है। नेतबंध प्रथीसिंह ने शूर वीरों को स्वर्गगामी

बना हूरों और अप्सराओं को निहाल कर दी है। हे ताखां! मूंछें उगने की किशोरावस्था में तू ही अपने कुल को अधिक गौरव प्रदान करने वाला है। हे नेतबंध! तू ही गनीमों के सिर पर अपना झंडा गाड़ता है। हे कालेपहाड़! किशोरसिंह को तू ही सही सलामत निकाल लाता है और तू ही कट कट कर भयकर सेना को तलवार से काटता है। हे जयस्तंभ! महाराणा ने तेरी परीक्षा कर के तेरी जो प्रशंसा अपने मुख से की थी और जैसा तेरा भरोसा जानते थे, वैसा ही पराक्रम तूने कर दिखाया। तेरे युद्ध कौतुक को देख कर सहस्र रश्मि भास्कर भी प्रसन्न हो गये। तू ने चंडी को रक्त से तृप्त कर दी और अंगरेजों को तलवार का स्वाद खूब ही चखाया। तूने अपने स्वामी की दुहाई फिर फिरा दी। हे काले! भाई के हितार्थ सेनापति के रूप में भार ले कर तूने ही हाथ में तलवार पकड़ी और युद्ध में वीरगति प्राप्त करके उसे तूने बहुत ही उज्वल दिखाई। तू युद्ध में टुकड़े टुकड़े हो गया और रंभा के विमान का तिरस्कार कर तू तो सीधा रामधाम को चला गया।

वह वीर युद्ध के नक्कारे बजने पर इधर उधर टला नहीं और अपने शरीर पर तलवारों के प्रहार झेले। वह अप्सराओं की उपेक्षा कर गया और उन्हें उसने अस्पृश्य समझा। वह प्रथीसिंह हजारों शत्रुओं का हनन कर स्वयं टुकड़े टुकड़े हो गया और ज्योति स्वरूप में मिल गया।

[रचयिता:- किशनजी आढ़ा]

महाराणा प्रतापसिंह

छप्पय

अस लेगौ अणदाग, पाग लेगौ अणनामी।
गौ आडा गवड़ाय, जिको वहतो धुर वामी॥

नवरोजे नहँ गयौ, न गौ आतसां नवल्ली।
न गौ झरोखां हेट, जेठ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीते गयौ, डसण मूंद रसणा डसी।
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत साह प्रतापसी॥ १॥
[रचयिता–दुरसा जी आढा]

भावार्थः—जिसके घोड़े के कभी शाही दाग नहीं लगा, जिसका सिर कभी किसी मानव के सामने नहीं झुका, जो सदा कर्त्तव्य-शकट की बांई धुरी पर जुत कर विशेष भार वहन करता रहा, जो कभी नवरोजे में शरीक नहीं हुआ और जो संसार की सर्वोपरि नगरी दिल्ली के नित-नूतन तेज प्रताप वाले राजप्रासादों के झरोखों के नीचे कभी नहीं गया। वह गुहिल वंशी महाराणा अपने प्रण पालन द्वारा जीवन में विजयी हो गया।

हे प्रतापसिंह! तेरी मृत्यु के संवाद से बादशाह स्तब्ध हो गया, उसने दांत दबा कर अपनी जीभ को पकड़ ली और निश्वास छोड़ कर अपने नेत्र अश्रुपूरित कर दिये।

महाराणा फतहसिंह उदयपुर

दोहा

धर बाला चित नहँ बसी, तजी न कबहूं धीर।
रह्यौ जितै जबरी रखी, बाजी फतमल बीर॥ १॥

भावार्थः—परस्त्री की तरफ जिसका चित्त कभी गया ही नहीं और जो कभी धैर्य च्युत नहीं हुआ उस वीर वर फतहसिंह ने जब तक जीवित रहा, अपना पक्ष सदा ही प्रबल रक्खा।

सोरठा

अवनीसां उपदेस, सतजुग रौ देवण सही।
गामी गुणां नरेस, आजे फतमल आहड़ा॥ १॥

भावार्थः—अवनीशों को सतयुग के समान आचरण करने का उपदेश करने को, हे विख्यात गुणों के नरेश, आहड़ा फतहसिंह ! वापस आजा ।

पारथ रै परमाण, मच्छवेध कीबा मतै ।
भूपत हिन्दूभाण, आजे फतमल आहड़ा ॥ २ ॥

भावार्थः—पार्थ के समान मत्स्यवेध का लक्ष्य-वेध दिखाने को हे हिन्दूसूर्य भूपति आहड़ा फतहसिंह ! पीछा आजा ।

बीरां देवण बोध, धरम नाव खेवण धरा ।
जबर बली नृप जोध, आजे फतमल आहड़ा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे प्रबल पराक्रमी योद्धा नरपति, आहड़ा फतहसिंह ! वीरों को बोध देने और धरातल पर धर्म की नौका चलाने को आजा ।

सत री राखण बत्त, किम्मत हिम्मत री कियण ।
करण अकत्थ सुकत्थ, आजे फतमल आहड़ा ॥ ४ ॥

भावार्थः—सत्य की रक्षा, साहस का मूल्यांकन एवं अकथनीय ख्याति प्राप्त करने के लिये हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा ।

कविता पर दे कांन, काव्य मरम पारख करण ।
गुणयां समप्पण ग्यांन, आजे फतमल आहड़ा ॥ ५ ॥

भावार्थः—कविता को ध्यानपूर्वक सुन कर उसके मर्म की परीक्षा करने और गुणियों को भी ज्ञान देने को हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा ।

अणपखियां आधार, सार लेण दुखियां तणी ।
इल ऊपर इक बार, आजे फतमल आहड़ा ॥ ६ ॥

भावार्थः—दुःखी प्राणियों की सार-सम्हाल लेने को हे निरालंबों के अवलम्ब आहड़ा फतहसिंह ! एक बार तो पृथ्वी पर फिर आजा ।

सह गणियौ संसार, अवतारी नृप आपनैं ।
सो अवतार सु धार, आजे फतमल आहड़ा ।। ७ ।।

भावार्थः—सारे संसार ने तुझे अवतार स्वरूप माना था, हे नृपति आहड़ा फतहसिंह ! उसी अवतार को धारण कर के फिर आजा ।

मिस मृगया महाराज, परम धरा पावन करण ।
ले साथी सुरराज, आजे फतमल आहड़ा ।। ८ ।।

भावार्थः—हे आहड़ा फतहसिंह ! हे महाराणा ! सुरराज को साथी बना मृगया के बहाने से ही पृथ्वी को परम पावन करने को आजा ।

सादापण रै मांह, अँगवट रजवट ओपतौ ।
सो देवण दरसाह, आजे फतमल आड़ा ।। ९ ।।

भावार्थः—नितांत सादे रहन सहन में ही जो राजपूती बाँकापन तेरे शरीर पर सुशोभित था उसी अनुपम स्वरूप का फिर दर्शन देने को हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा ।

दहल शत्रुआं देण, मान समप्पण मित्रवां ।
विबुधां रा सुण वैण, आजे फतमल आहड़ा ।।१०।।

भावार्थः—हे आहड़ा फतहसिंह ! विबुधों की विनय सुन कर, शत्रुओं का दिल दहलाने और मित्रों को सम्मानित करने को आजा ।

चौड़ा जंगल आत, चढ घोड़ा दौड़ा कियण ।
ले बरछी निज हात, आजे फतमल आहड़ा ।।११।।

भावार्थः—लंबे चौड़े जंगल सामने आते ही भाला हाथ में ले घुड़दौड़ करने को, हे आहाड़ा फतहसिंह ! आजा ।

आपौ अर उणिहार, आप जिसो नहँ और में।
देण दरस दातार, आजे फतमल आहड़ा ॥१२॥

भावार्थ:—आप के जैसा पौरुष और आप के जैसी वीर मुखमुद्रा और किसी में देखने को नहीं मिलती। हे दानी आहड़ा फतहसिंह! तेरे उसी स्वरूप का दर्शन देने को आजा।

वीर निहारै वाट, सकल पुकारै उच्च सुर।
रचण सभा सुभ ठाट, आजे फतमल आहड़ा ॥१३॥

भावार्थ:—वीर गण तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं और अन्य भी सब उच्चस्वर से तुझे पुकार रहे हैं, हे आहड़ा फतहसिंह! अपनी राजसभा का वह शुभ ठाट दिखाने को आजा।

मन सूं करतौ मान, कँइ मोटा छोटा कँई।
सो देवण सनमान, आजे फ़तमल आहड़ा ॥१४॥

भावार्थ:—क्या बड़ा और क्या छोटा, तू सब का हृदय से आदर सत्कार करता था। वही सम्मान फिर प्रदान करने को, हे आहड़ा फतहसिंह! आजा।

रघुवर व्हाली राह, वा झांकी नितनैम री।
देवणनै नरनाह, आजे फतमल आहड़ा ॥१५॥

भावार्थ:—मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समान धार्मिक नित्य-नियम की झांकी का दर्शन देने को हे नरनाह आहड़ा फतहसिंह! आजा।

पूतां ज्यूं कर प्यार, रजपूतां नै राखतौ।
वांनै व्यथित विचार, आजे फतमल आहड़ा ॥१६॥

भावार्थ:—तू राजपूतों को अपने पुत्रों के समान प्यार करता था। अब उन्हें तेरे वियोग में व्यथित देख, हे आहड़ा फतहसिंह! आजा।

दिस-दिस रा नरपाल, अंगरेज यूरप तणा।
(तनैं) कहै धरा री ढाल, आजे फतमल आहड़ा ॥१७॥

भावार्थ:—दिशा विदिशा के राजाओं तथा अँगरेज आदि यूरोप के लोगों ने तुझे धरा की ढाल स्वरूप कहा है। हे आहड़ा, फतहसिंह ! आजा।

दरस कियोड़ा लोग, करै सोग अचरज कई।
विण दीठां उर व्योग, आजे फतमल आहड़ा ॥१८॥

भावार्थ:—तेरे दर्शन जिन लोगों ने किये हैं वे तेरे शोक में निमग्न हो इसमें तो अचरज ही क्या है, जिन लोगों ने कभी तुझे नहीं देखा उनके हृदय भी तेरे वियोग में व्यथित हैं। हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

स्रूप गुणां सदरूप, रूप विकट रजवट तणा।
भूपां हंदा भूप, आजे फतमल आहड़ा ॥१९॥

भावार्थ:—तू अपने प्रपितामह स्वरूपसिंह के गुणों का मूर्त स्वरूप था और था राजपूती वट का विकट रूप। हे राज राजेश्व आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

मंडण आद म्रजाद, खँडण कुरीती खलक री।
सुण दुनिया रौ साद, आजे फतमल आहड़ा ॥२०॥

भावार्थ:—परम्परागत मर्यादा को बनाई रखने और कुरीतियों का खंडन करने को, हे आहड़ा फतहसिंह ! दुनिया की पुकार सुन कर आजा।

रालै आंसू नैण, बालकिसन बालक ज्युं ही।
दुवौ भाल रौ देण, आजे फतमल आहड़ा ॥२१॥

भावार्थः—तुम्हारा प्रिय सेवक बालकिशन आँखों से आँसू बहा रहा है, उसे सदा की भाँति मृगया की खबर लाने की आज्ञा देने को हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

अमरा रै उर चाह, पल पल चाहै पांडियो ।
सांई लेण सलाह, आजे फतमल आहड़ा ॥ २२ ॥

भावार्थः—अमरसिंह के हृदय में तेरे दर्शन की बड़ी लालसा है और इसी प्रकार पांडे भी प्रतिपल तुम्हारे दर्शन के लिये उत्कंठित हैं। सदा की भाँति इनकी सलाह लेने को हे स्वामी, आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

सब सेवक सरदार, राज तणा जे राजवी ।
चाहै प्यार अपार, आजे फतमल आहड़ा ॥ २३ ॥

भावार्थः—तुम्हारे सब सेवक, सामन्त और राजवी लोग तुम्हारा वही प्रेम फिर चाह रहे हैं, हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

प्रजा सकल परिवार, अपण पराया आदि ले ।
रहिया बाट निहार, आजे फतमल आहड़ा ॥ २४ ॥

भावार्थः—सम्पूर्ण प्रजा, सारा राजपरिवार और सब अपने पराये लोग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं, हे आहड़ा फतहसिंह ! आजा।

यवन हिन्दु अणपार, बोले इकमत तो बिना ।
सब सूनौ संसार, आजे फतमल आहड़ा ॥ २५ ॥

भावार्थः—हिन्दू और मुसलमान सभी एक स्वर से यही कह रहे हैं कि हे आहड़ा फतहसिंह ! तेरे बिना संसार सूना सा लग रहा है वापस चला आ।

[कविराव मोहनसिंह]

राजराणा फतहसिंह, देलवाड़ा

गीत

करतौ उपकार दीन हितकारी ।
नहँ करतौ दत देण नकार ॥
भरतौ लोभ न लाभ भँडारां ।
सुध सागर तरतौ संसार ॥ १ ॥

सुत अरिसाल ढाल सुभ टांरौ ।
है उण बिन सेवक बेहाल ॥
भाल विसाल होय कद भेटां ।
पोहमी कद करही प्रतपाल ॥ २ ॥

मता तणौ अडग मकवाणौ ।
सता धरम जिण रखी सरै ॥
फता जिसौ धणी को फन ही ।
खता न देतौ खून खरै ॥ ३ ॥

रहतां दूर घड़ी नहँ सरतौ ।
रघुवर खोसी हेम रड़ी ॥
जातां जीव जड़ी नृप झालौ ।
पातां मोटी कसर पड़ी ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो दीन हितकारी सदा उपकार किया करता था, जो दान देने के लिये कभी इन्कार नहीं करता था और जो लोभवश हो केवल अपने ही भण्डार नहीं भरता था वह शुद्ध हृदय इस प्रकार संसार सागर को तैरता रहता था। वह वैरीसाल का पुत्र सुभटों के लिये

ढाल स्वरूप था । हा, उसके बिना उसके सारे सेवक बेहाल हो रहे हैं । उस विशाल भाल से अब कब भेंट होगी ? वह अब फिर कब अपनी प्रिय प्रजा का पालन करेगा । वह मकवाणा अपने संकल्प का अत्यन्त दृढ़ था, उसने धर्मसत्ता को सदा उन्नत रक्खा था । उस फतहसिंह के समान स्वामी और कौन होगा जो अपराध करने पर भी अपराधी का कभी अहित नहीं करता था । जिससे एक घड़ी भी दूर रहना सहन नहीं होता था उस वर्ण-गिरि को प्रभु ने हरण कर लिया । उस जीवजड़ी झाला नृप के चले जाने से चारणों की महती क्षति हो गई है ।

[रचयिताः--जवानसिंह आशिया]

कुंवर बखतावरसिंह और उनकी बहिन शृंगारबाई, झलाय

गीत

कल जोजो जाम दुहूँ कीरत रा ।
कवि सारा वाखाण करै ॥
सभै सिंगार अँगार सिंगारां ।
खग धारां बगतेस खरै ॥ १ ॥

जिणसूं कवण झिलतपुर जोड़ै ।
जोध नीपजै इसा जड़ै ॥
कँवरी चढै धणी छल काठां ।
विजड़ दुधारां कुँवर बढै ॥ २ ॥

मानावतां एम कुल मोटौ ।
सदा जिकां रण गरज सरी ॥

बूंदी जाय करी हद बाई।
कथ भाई आंबेर करी ॥ ३ ॥

जिण सूं पिसण बाद कुण जीपै।
हद सुसबद प्रथमाद हुवौ ॥
सतपुर गई चाढ जल सारां।
मारण हारां मार मुवौ ॥ ४ ॥

[रचयिता:—अज्ञात]

भावार्थ:—संसार देखे कि कीरतसिंह की ये दोनों संतानें कैसी हैं जिनकी सब कविजन प्रशंसा करते हैं। उसकी पुत्री शृंगारकुमारी ते अपने पति के साथ अग्नि स्फुल्लिगों का शृंगार करती है और पुत्र बख्तावरसिंह युद्ध में तलवारों के मुँह कट पड़ता है। इसी से तो झलाय के बराबर कोई नहीं आ सकता, जहाँ ऐसे योद्धा उत्पन्न होते हैं कि कुमारी तो पति के साथ चितारोहण करती है और कुमार दुधारी कृपाणों से टुकड़े टुकड़े होता है। मानावतों का यह कुल इसीलिये महान् है कि इनके कारण युद्ध में सदा सफलता मिली है। देखो न, बहिन ने तो बूंदी जाकर साहस की सीमा बता दी और भाई ने आमेर में। इन दोनों की कीर्ति पृथ्वी पर छा गई कि बहिन तो अपने दोनों पक्षों को गौरवान्वित कर सतियों के लोक को चली गई और भाई उसके घातकों का प्राण लेकर ही वीर गति को प्राप्त हुआ।

महाराजा बलवंतसिंह, रतलाम

गीत

के ही एलापती राग पात कीरती गावता के ही।
सुणावता विप्र के ही सभा में सलोक ॥
वडा भाई कलू तोनै आवतां न लागी वेला।
प्रथीनाथ बलू तेस जावतां प्रलोक ॥ १ ॥

थंड देखे रांव तणा उलालुवा वीत थैला।
सुहगां भालुवा रौर गालुवा सहीप॥
फीलां सीस चढ़ौ मोरू प्रजा नै पालुवा फेरूं।
मालुवा देस में पाछा पधारौ महीप॥ २॥

बैठौ दरीखानै तीख चोख री करेवा वातां।
अनेकां ठौड़ री ख्यातां सुणेवा आजान॥
दुपट्टा दंताला ताजी दुसाला मदीलां देवा।
रूपगां महोला लेवा पधारौ राजान॥ ३॥

जोरा वार इन्द्र कदी अखाड़ै आवसी जाणू।
लगावसी खलां कदी तालुवै लगाम॥
रीझे वलोवलां कदी कसूंबौ पावसी राजा।
हलोवलां भड़ां कदी थावसी हगाम॥ ४॥

फाटौ लोह आभ धरा सुरेस रो वज्र फाटौ।
पेखे भूप जावौ फाटौ जलालौ पहाड़॥
फेरूं हीरौ कंठ रौ आठरा ठौड़ सूं फाटौ।
धणी जातां हियौ म्हारौ न फाटौ भ्रकार॥ ५॥

वसू पाछा आवौ कहै हाडौती माढ रा वासी।
दाखै ढूंढाड़ रा वासी झुरै दाम दाम॥
कमंधेस वासी मारवाड़ रा चिंतारै केही।
त्यूं ही मेवाड़ रा वासी चींतारै तमाम॥ ६॥

सेल दावौ छत्रधारी दहल्लां मनावौ सत्रां।
करै याग त्यारी गोठां हल्लां कहीप॥
भड़ां वाला फाटै हिया सहल्लां करेवा भूरा।
महल्लां अनेक मौज चितावौ महीप॥ ७॥

छूटौ नीर चखां सन्तराम ऊँचरंता छेला।
सरूपदास री छाती उभेला समंद॥
जामी आज म्हांनै छोड़ अकेला कठीनै जावौ।
कोयलां चारंगां हेला दे रही कमंद॥ ८॥

कासूं जोर चालै टेट हरी रै अगाड़ी कूं तो।
दूसरौ न पूंतौ उठै अकमां दलूंत॥
तजे मोह माया हुवौ वासी सैंजोत रौ तूं तो।
धामीवंध हूँ तो तोनै हूँतो न भूलूं बलूंत॥ ६॥

सोरठा

"आऊं चरणां धाम, बलवँत रौ चित यूं वहै।
सेवग रौ सतराम, अनदाता छहलौ अवै॥१॥"
माणक हूँत अमोल, बीछड़तां कहिया वचन।
बलवँत थारा बोल, खारा निस दिन खटकसी॥२॥

भावार्थः—जिसकी सभा में कई भूस्वामी विराजमान रहते हैं, कई कविगण कीर्ति गान किया करते और कई विप्रवृन्द श्लोक सुनाया करते थे। उस पृथ्वीनाथ बलवन्तसिंह के परलोकवासी होते ही, ए मेरे बड़े भाई कलिकाल! तुझे अपना प्रभाव जमाते कुछ भी तो देर नहीं लगी। अपनी प्रजा के पालनार्थ सुधादृष्टि की वृष्टि करने को और दरिद्रों को

देखते ही उनके दारिद्र्य-नाश के हेतु द्रव्य के थैले खोल देने के लिये हे माल ! हाथी पर सवार हो एक बार तो पीछे मालव देश में पधार आओ। उच्च विचारों की बातें करने, अनेक स्थानों के इतिहास सुनने, काव्यों पर अनुराग दिखाने और वस्त्राभरण एवं हाथी घोड़े बख्शीश करने को हे राजा अपने दरबार में आ बैठो, पधार आओ। हा ! अब वह समर्थ इन्द्र कब उमंग में आवेगा ? कब वह दुष्टों के मुँह में लगाम लगावेगा ? कब हलचल होकर सुभटों के समारोह होंगे और चारों ओर रोज बख्शीश होते हुए राजा ! कब कसूंबा (अफीम का रस) पिलावेगा ? आज मानो धरती आकाश फट गये हैं, पहाड़ टूट पड़े हैं और इन्द्र का वज्र सिर पर आपड़ा है किन्तु हा ! इस स्वामी के चले जाने पर भी मेरा हृदय नहीं फट पड़ा,—उसे धिक्कार है। हाड़ौती और माड़ (जैसलमेर) के निवासी तुम्हें पुकार रहे हैं,—पीछे चले आओ। रो रो कर तमाम हूंढाड़ वाले यहीं विलाप कर रहे हैं और इसी प्रकार हे कर्मवेश ! मारवाड़ और मेवाड़ के वासी भी तुम्हें याद कर रहे हैं। हे छत्रधारी ! भाला हाथ में ले शत्रुओं के दिल दहला दो, बागों में पूर्ववत् मौजमौजों की तय्यारी होने दो, महलों में अनेकानेक आमोद प्रमोदों का आरंभ कराओ। हे महिपति ! तुम्हारे साथ सैर किये बिना तुम्हारे सुभटों के हृदय फटे जा रहे हैं। तुम्हारे मुख से "अन्तिम सलाम" कहते ही आंखों से अश्रुधारा बह निकली, रवलदास की छाती में समुद्र का सा ज्वारभाटा आ रहा है। हे कमंध ! कालिन्दी चारों गनायें पुकार रही हैं—स्वामी ! हम सब को एकाकी छोड़ कहां चले जा रहे हो ?

यदि स्वयं नारायण के सामने जाकर कहूँ तो भी क्या जोर चल सकता है तू तो अकर्मों का दहन करके उस स्थान पर पहुँच गया; जहां कोई दूसरा नहीं पहुँचा। हे यशवन्त ! मोह माया का त्याग करके तू तो ज्योतिस्वरूप में समा गया है, परन्तु सामीधर्म ! मैं तो तुझे कभी भूल नहीं सकूंगा।

"बलवन्तसिंह का चित्त तो यों बढ़ रहा है कि आप के चरणों में ही बैठा रहूँ, परन्तु, अन्नदाता ! अब सेवक का तो यह अन्तिम "सत्तराम" है" ये जो मणि मुक्ताओं से भी अमूल्य शब्द, हे बलवन्त ! तूने बिछुड़ते समय कहे थे, मेरे हृदय में शल्य की तरह रात दिन खटकते रहेंगे।

[रचयिता:—स्वरूपदास दादूपंथी]

महाराजा बलवन्तसिंह गोठड़े

गीत (१)

वडा बोलतो बोल उदमाद कर तौ विढण ।
तोल तो खाग भुज वढण ताया ॥
जुध खलां न देस्यूं पूठ कह तौ जिको ।
ऊठ चहुवाण मिजमान आया ॥ १ ॥

वाज तासा धमक हींस घोड़ा विखम ।
चमक तोड़ा अमक झाल चोवै ॥
भाखतौ लड़ूं खग झाट मन भावणा ।
जके दल पांवणा वाट जोवै ॥ २ ॥

जाग चामल गिरद कीध धाटा जपत ।
लाग आंटा सपत गीध लूभा ॥
काढतो वचन मुख चाव ; जुध कारणै ।
आव भड़ वारणै कटक ऊभा ॥ ३ ॥

सुण वचन चखां तज नींद असलाक तौ ।
उरड़ खग हाकतो जुध अधायौ ॥

चाव भुजबलां श्रोयण अजब चाखतौ ।
आखतौ खलां सिर गजब आयौ ॥ ४ ॥

बण मोह पतँग डोली बहै बायलां ।
पतँग झड़ छायलां कोह पूरौ ॥
ताप खग झड़ां तौड़ै कमल तायलां ।
भड़ां अजरायलां बाघ भूरौ ॥ ५ ॥

जगायौ सिंघ बलवंत जिम जागियो ।
बागियौ दीह अँगरेज बागां ॥
खीजकर खलां आवौ कटक खागियौ ।
खड जितै लागियौ खाग धारां ॥ ६ ॥

अभागौ बहादर सुतन साहब उरां ।
अरि बड़ा जमायौ सोक अछ्रीक ॥
तरुण वय सम्हायौ खड्ग साहस तिकै ।
मरण लग निभायौ भलौ मछ्रीक ॥ ७ ॥

भावार्थः—तू युद्ध करने के लिये बड़ी बड़ी बातें करता हुआ उन्मत्तता दिखाता था, शत्रुनाश के लिये तलवार उठा लेता था और कहा करता था कि रणभूमि में शत्रु को कभी पीठ नहीं दिखाऊँगा; वह समय आगया है। चहुवाण उठ, महमान आगये हैं। युद्ध के बाजे बज रहे हैं, घोड़े हिनहिना रहे हैं और बन्दूकों के तोड़े चमक रहे हैं। तू कहा करता था कि मैं तलवारों से युद्ध करना चाहता हूँ। तेरी इच्छानुसार अब वे तेरे मन चाहे महमान तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। चम्बल के इर्दगिर्द चारों ओर सात सात घेरे डाल कर सब घाट अवरुद्ध

कर लिये गये हैं और गिद्ध ताक रहे हैं। तू युद्धानुराग के वचन कहा करता था। अब ये सेनायें सामने खड़ी हैं। वीरशिरोमणि बाहिर आ।

इस प्रकार आह्वान के वचन सुनते ही वह योद्धा निद्रा तज कर अलसाता हुवा बाहिर निकला। सामने शत्रु सेना को देखते ही वह युद्ध पिपासु आतुरता से तलवार चलाता और उसे रक्त का स्वाद चखाता हुआ बड़ी तीव्रता से वैरियों पर टूट पड़ा। वह दुर्दमनीय सुभट शेर-बबर के समान क्रोधोन्मत्त है। वह शत्रुओं के मस्तक तलवार से उड़ा रहा है। भयंकर शस्त्र प्रहारों के कारण घायलों की डोलियाँ चल रही हैं। उसने शत्रु सेना में ग़ज़ब का तहलका मचा दिया है।

सिंह के समान जिस बलवन्त को जगाया था, वह उसी प्रकार जगा, जबतक उसका शरीर तलवारों की धारों के लग नहीं गया वह अँगरेजों के आधे कटक को खा गया। वह बहादुरसिंह का पुत्र जब तक जीवित रहा, साहब लोगों के लिये सदा अवांछनीय बन कर उनके हृदयों में चुभता रहा। और उनके सैनिक दलों में सदा जबदस्त शोक व्याप्त करता रहा। उस वीर श्रेष्ठ चहुवान ने साहस के साथ जो खड्ग यौवन में अंगीकार किया था, उसे उसने मृत्यु पर्यन्त खूब ही निभाया।

गीत (२)

अँगरेज कहै मत भरै उलाला।
तोड़ण गढ ताला तरजूत ॥
अब तो मान बहादर वाला।
रे औगणगाला रजपूत ॥ १ ॥

कीधी घणा परदेस कजाकां।
दल लाखां सिर घावा दिया ॥

तो जुध विना अमावड़ तो ने ।
वावड़ आवे भोज विया ॥ २ ॥

समै देख कर अ.च मलामी ।
पाड़ै मत खामीस पढ ॥
दे आवध आजा ग्रह दावण ।
रावण वाली छोड रढ ॥ ३ ॥

इम बोलै तोलै खग आचां ।
अण डोलै चहुवाण अनै ॥
अँगरेजां धड़ सीस उतारूँ ।
मारूं जद आलगै मने ॥ ४ ॥

कहता उटक बाज नहँ काला ।
त्रँबाक अकाला कटक तणा ॥
एकण बलवँतसिंघ ऊपरा ।
घांसाहर लूंबिया घणा ॥ ५ ॥

पड़ तोपां इक साथ पलीता ।
धुंवाधोर गोलां धमरूल ॥
बावर हाथ कहै घड़ बूठौ ।
सात पहर जूटौ सादूल ॥ ६ ॥

भड़ हाडा सोहण बड भागी ।
बोहण अनड़ बिलागी डाक ॥

लोहां गाल़ कहर धक लागी ।
एक पहर वागी ऐराक ॥ ७ ॥

फाचर कमल़ उडै धड़ फूटै ।
गोल़ा उड तूटै गज़ब ॥
कीधा समर उमेद कल़ोधर ।
पैंड पैंड असमेध प्रब ॥ ८ ॥

रहियौ जितै खल़ां सिर रूठौ ।
हैजम धड़चि विछूटौ हंस ॥
पड़ियां धरा न खूटौ पाणी ।
सिर तूटां छूटौ साहँस ॥ ९ ॥

भावार्थः—अँगरेज़ कहते हैं कि ऐ बहादुरसिंह के पुत्र! ऐ गढ़ों के ताले तोड़ने वाले! अब अधिक उछल कूद मत कर। ऐ ऐबदार राजपूत! अब तो मान जा। तूने दूसरों के प्रदेशों पर कई धावे किये हैं, तूने लाखों की सेनाओं पर प्रहार किये हैं, तुझे संग्राम के बिना चैन नहीं पड़ता और हे दूसरे भोज! तुझे हर समय युद्ध की ही याद आती है। किन्तु अब बदले हुए समय को देख और हाथ जोड़ कर सलाम करले! शस्त्र रख दे और हमारा पल्ला पकड़ ले। अब यह रावण का सा हठ छोड़ दे। आनाकानी मत कर।

इन बातों को सुन कर वह अपने संकल्प का अडिग चहुवाण कहता है, कैसी बातें करते हो! मुझे तो चैन ही तब पड़ता है, जब मैं अँगरेजों के धड़ से सर उतारता हूँ और उन्हें नष्ट करता हूँ।

इस प्रकार के वचन बोलते हुए अकेले बलवन्तसिंह पर घोर निनाद करते हुए युद्ध वाद्यों के साथ अनेक सिपाही टूट पड़े। दोनों

पर एक ही साथ पलीते पड़े, गोले बरसने लगे और धुँवे से आकाश छा गया। मस्तकों के टुकड़े टुकड़े हो रहे हैं, शरीर बिंध रहे हैं और गोले गजब ढहा रहे हैं। ऐसे घमासान युद्ध में उस नर शार्दूल की एक पहर तक अनवरत तलवार चलती रही। युद्ध में शोभायमान उस बड भागी उम्मेदसिंह के कुलोद्धारक ने समर-भूमि में कर्तव्य पालन रूपी अश्वमेघ यज्ञ पग पग पर किये। जब तक उसके शरीर में प्राण रहा, वह शत्रु संहार करता रहा और करते करते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये। पृथ्वी पर गिर जाने पर भी उसका पौरुष क्षीण नहीं हुआ। जब उसका सिर धड़ से अलग कर दिया गया, तभी उसका साहस तिरोहित हुवा।

गीत (३)

माडा सुण रे अंगरेज मनावै।
गाढा तैं कीधा गरट॥
आचां लीह गहै मति आडा।
हाडा अब तो छोड हट॥ १॥
तैं घण दुरंग काढिया ताला।
मत बाला करि घाणमथाण॥
वार वार फेरै विसटाला।
चाला मति मांडे चहुवाण॥ २॥
पतसाही फुर माण म पेले।
झेले मति बोह तो झग॥
माथौ किम धूणै महाराजा।
आजा साहब तणौ अग॥ ३॥

इम बीलै मूंछां आंवलतौ ।
बलत्रं। चख झलतौ मजबूत ॥
खेटा परवै जसी धन खायौ-।
राणी नहं जायौ रजपूत ॥ ४ ॥
सुणतां इम ताणीया घांसाहर ।
कोटा लग छबिया कटक ॥
ऊभा पगां न देसी ईजत ।
रिवतालौ लेसी रटक ॥ ५ ॥
बज तासा लूंबे घण बाहर ।
मांडे आहर मार मुख ॥
थल पाटण तीरथ निच थाहर ।
रुपियौ नाहर तणी रुख ॥ ६ ॥
.... ।
तोपां झल मंगल तणतांल ॥
कुण गंजै बलवंत कजाकी ।
डाकी सभ ऊभौ डाढाल ॥ ७ ॥
धर छाती पर सेन धकावै ।
ताई घण खावै तड़फ ॥
साम्हौ कुण आवै सांफलवां ।
हाडौ जम वाली हड़फ ॥ ८ ॥
पहर सात गोलां जुध पढियौ ।
रावण रढ रढियौ जमराण ॥

आवण काम खाग ऊकढियौ ।
चीता जिम कढियौ चहुवाण ॥ ९ ॥
सुत धौंकल फतमाल सहेतो ।
धव ग्रहियां भुज सार ॥
सहर हाज पचियौ चहुँ सूरां ।
बाट बाट खागां बोपार ॥१०॥
भभकै घाव ऊछटै भेजा ।
तूटै धड़ नेजा तड़क ॥
वेराहर पाडै दल वारा ।
धारा तीरथ तणी धक ॥११॥
पलटै जठी धकावै पैलां ।
गैलां खग बाहै गजर ॥
दल चौकस चहुँ वैबल दावै ।
आवै आवै कहैं अर ॥१२॥
हल चल नरां हैमरां हड बड़ ।
झड़ फड़ पंखण तोप झग ॥
बहादर सुतन हाक जुध बागां ।
लड़ियौ खागां पहर लग ॥१३॥
चामल नीर श्रोण रँग चाढे ।
पड़ियौ दल पाड़े पचरंग ॥
खलरूढां बूढौ झड़ खागां ।
वल छूटौ तूटा उतबंग ॥१४॥

भावार्थ:—अँगरेज उसे मना रहे हैं कि भले आदमी सुन, तूने खूब ही उत्पात मचाया है। हाडा! अब इस हठ को छोड़ दे। मत इन्कार हो। तूने बहुत से किले तहसनहस कर दिये हैं। फिर भी हम बार बार संधि समझौते के लिये आग्रह कर रहे हैं। चहुवाण! पैंतरे मत बदल। बादशाही फरमान की उपेक्षा मत कर। अपने सिर पर आपत्तियों का आव्हान मत कर। महाराजा! सिर क्यों हिलाता है? साहब बहादुर के सामने पेश हो जा।

ये वचन सुनने पर, जिसकी आँखों से ज्वालायें निकल रही है वह दृढ़ संकल्प बलवन्तसिंह अपनी मूँछों को बल देते हुए कहता है कि जिसने बिना पराक्रम पुरुषार्थ के धन वैभव का उपभोग किया, वह अपनी माता राणी के गर्भ से राजपूत ही नहीं जन्मा।

बलवन्तसिंह के ये भाव विदित होते ही कोटा तक फौजें छा गई। किन्तु इससे क्या? वह सामन्त श्रेष्ठ शत्रुओं से जरूर ही लोहा लेगा और प्राण रहते अपनी प्रतिष्ठा के कदापि बट्टा नहीं लगने देगा।

जहाँ युद्ध वाद्य बज रहे हैं और आक्रमक विपुल वाहिनी में मारो मारो का ही शब्द आकाश और पृथ्वी को गुँजा रहा है, उस केशोराय की पाटन के तीर्थ स्थल में वह वीराग्रणी सिंह के समान उस रणभूमि में तोपों की मंगल ज्वालायें उठ रही हैं। रौद्ररस छा रहा है। वीर वर सज्जित होकर खड़ा हो गया है। उस रण पटु बलवन्तसिंह को कौन परास्त कर सकता है? वह हाडा यमराज का ही दूसरा रूप बना हुआ है, उससे भिड़ने को सामने आने का कौन साहस कर सकता है? सात पहर से तोपें गोले उगल रही हैं। वह कृतान्त रूप चहुवाण रावण का सा हठ ग्रहण किये, हाथ में नंगी शमशीर लिये अपने आप को युद्धाग्नि में होम देने के संकल्प से चीते के समान अचानक समर-

भूमि में आ कूदा है। अपने भाई शेरसिंह और पुत्र धौंकलसिंह व फतहसिंह के सहित चारों शूरवीरों ने रणभूमि रूपी नगर में चारों ओर तलवारों का ही व्यापार फैला दिया। घाव भभक रहे हैं, भेजे निकल रहे हैं, भाले शरीरों में पार होकर तड़ातड़ टूट रहे है। उस धारातीर्थ में वैरीगण त्राहि त्राहि पुकार रहे हैं। जिधर भी ये चारों मुड़ जाते हैं, जिधर भी ये मुँह कर देते हैं, शत्रु भाग खड़े होते हैं और रास्ते हो जाते हैं। भयत्रस्त बैरी गण पुकार उठते हैं वे आये, वे आये। सैनिकों में अजीब हलचल है, घोड़ों की हड़बड़ है, आमिष भोजी पक्षिओं के परों की फड़फड़ाहट है और तोपों की ज्वालायें धधक रही हैं। ऐसे घोर संग्राम में वह बहादुरसिंह का पुत्र निरन्तर एक पहर तक तलवार चलाता रहा। रूठे रिपुओं पर तलवार की धारें बरसा-बरसा कर उसने चंबल के पानी पर रक्त का रंग चढ़ा दिया और पचरंगी फौजों को विनष्ट करते हुए उसका पराक्रम तभी उससे दूर हुआ जब उसका उत्तमांग धड़ से जुदा हो गया।

गीत (४)

भोळा अँगरेज अळीकड़ भाखै।
इम आखै बळवंत अभंग ॥
उतबँग लार लगाया आवध।
आवध री लारां उतबंग ॥१॥

बहादर सुनत एम मुख बोलै।
बळ तोलै कासूं चख बोह ॥
लोहां कमळ तणी लज लागी।
लीजै कमळ तूटियां लोह ॥२॥

खग धारां गोरा सिर खांडू।
वैरी दळ पाड़ू भर बाथ ॥

सिरचै साथ ससत्र सम्हाया।
सिर मो हुवौ ससत्रां साथ ॥३॥
कहतौ वचन जिसा हट कीधा।
पिसणां रत पीधा अणपार ॥
सिर तूटां लीधा पर साथां।
हाथां नहँ दीधा हथियार ॥४॥

भावार्थ:—दुर्दमनीय बलवन्तसिंह कहता है, भोले अङ्गरेजों ! क्या निकम्मी बातें करते हो। मैंने अपने शिर के साथ शस्त्रों को लगा रक्खा है और शस्त्रों के साथ मेरा शिर है। बहादुरसिंह का पुत्र बोलता है कि तुम किसके साथ बातें करते हो ? मेरे शिर की लाज शस्त्रों के लगी हुई है। शिर टूटने पर ही शस्त्र तुम्हारे हाथ आवेंगे। मैं इन शस्त्रों से गोरों के शिरों को कुचलूंगा और उन रिपुओं को पकड़ पकड़ कर धराशायी करूंगा। मैंने शिर के साथ ही शस्त्र पकड़े हैं और मेरा शिर शस्त्रों के साथ है।

वह जिस प्रकार कहता था वैसा ही हठ उसने निभाया और खूब ही शत्रु-शोणित पिया। अपने हाथों से उसने हथियार नहीं दिये। शिर धड़ से जुदा होने पर ही शत्रु उसके शस्त्र ले सके।

गीत (५)

अपछर शिव सकति विधी इम आखै ।
आया जुध नूंतिया अटै ॥
कद अब खलां छोडसी केड़ो ।
कह हाडा पौढसी कटै ॥ १ ॥
पगी ईस जोगणि खग प्रभणै ।
सात पहर बीता जुध साल ॥

गुड़सी कटै कनक खग गामां।
पड़सी किण ठामां पूंचाल॥ २॥

रंभा मर काली दुज रूठे।
हाडा बलवँत रतन हरा॥
अब कर किता तोड़सी आवध।
धड़ केता लोटसी धरा॥ ३॥

सिर वर रुधिर दिये पल सूरां।
विधी पिंड कर पितर विधान॥
धड़ भूगं उडियौ खग धारां।
सजि च्यारां पूगौ सनमान॥ ४॥

भावार्थः—अप्सरा, शिव, शक्ति और विधि कह रहे हैं कि हाड़ा! हम युद्ध निमंत्रित होकर यहां आये हैं। तू अब शत्रुओं का पिंड कब छोड़ेगा और कहां तू धराशायी होगा? परी, ईश, योगिनी और खग कहते हैं कि तुझे युद्ध करते करते सात प्रहर बीत गये हैं. बता तेरा सिर कहां गिरेगा और शरीर कहां? रम्भा, शिव, काली और गिद्धादि पक्षी रुष्ट से होकर कहते हैं कि हे रत्नसिंह के पौत्र हाडा बलवंतसिंह अब अपने हाथों से शत्रुओं पर और कितने शस्त्र तोड़ेगा और कितने धड़ भूमि पर लुढ़कावेगा?

उस वीराग्रणी ने गोरों के शरीर तलवार से काट काट कर उन चारों का शिर, वर, रुधिर और मांस के द्वारा पूरा आतिथ्य सम्मान किया और फिर विधि पूर्वक पितरों के लिये अपने रक्त से पिंड दान कर स्वर्गवासी हो गया।

(गीत ६)

समहर बलवंत वाहतां असमर।
छूटा फिरँग दलां रत छोल॥
रातौ देख अचँभ रतनाकर।
चामल किम कीधौ रँग चोल॥१॥

रूकां झड़ हाडा अंगरेजां।
दल पंडव जूटा कुरु द्रोण॥
संभ्रम थयौ पूछवै सागर।
सरिता केम थयौ जल स्रोण॥२॥

हिन्दू गुरँड खगा हूँचकिया।
वहिया वाहण मूझ विचाल॥
दल सुध देवधुनी इम दाखै।
रतनाकर वहिया रत खाल॥३॥

असमर झटां बहादर वालै।
थट हैंवर नर गरट थया॥
वसे पछै वैकुंठ विचालै।
कालै रँग जल स्रोण किया॥४॥

भावार्थः—चंबल के पानी को लालिमा युक्त देख कर रत्नाकर आश्चर्य चकित हो, पूछता है कि आज तैंने लाल रंग कैसे धारण कर लिया है? चम्बल उत्तर देती है कि युद्ध में बलवंतसिंह के असिप्रहारों से फिरंगियों की सेना में जो रक्त धारायें बह निकलीं वे मेरे पानी में आ मिलीं। विस्मित होकर सागर पूछता है कि सरिता! तेरा पानी रक्त कैसे बन गया? चंबल कहती है, कौरव पाण्डवों के समान अंगरेजों

और हाड़ों के दल तलवारों से भिड़ पड़े। शुद्धहृदया देवधुनी प्रकट करती है कि हिन्दू और गोरे तलवारों से जूझ गये, हे रत्नाकर! रक्त के नाले बहने लगे और उनके वाहन भी युद्ध में बह गये। बहादुरसिंह के पुत्र की कृपाण के प्रहारों से योद्धाओं और घोड़ों के झुण्ड के झुण्ड समाप्त हो गये और वह स्वयं भी कैलाशवासी हो गया। मेरे जल को उसी वीर ने इस प्रकार रक्त वर्ण बना दिया है।

[रचयिता–चंडीदान मिश्रण, बूंदी]

गीत (७)

दगौ धारणौ नहीं छौ फेरे फिरंगी चोफेर दोला।
सता बीजा हारणो नहीं छौ सब छे स॥
भाराथ जूटतां काज सारणौ सही छौ भूप।
बूंदीनाथ मारणौ नहीं छौ बल्लूतेस॥१॥

उभै राहां तोक बागां बेंडाक भोकतौ आडौ।
सामराथां रोकतौ सत्राटां जाडै साथ॥
तणो बहादुरेस माडां जांखम्यौ न होतौ तो तौ।
बला आडी ढाल हाडौ होतौ बलानाथ॥२॥

जंगां में अटंगो छौ छटा में पाराथ जेहौ।
माथै राव लीधौ रौल दट्टा में मथोग॥
छत्री बलूतेस खलां थट्टां में हकालणौ छौ।
जिको सैंज सट्टा में न भांजणौ छौ जोग॥३॥

पटायां बियां रै कांय मारियौ गोठड़ा–पत्ती।
उदासी धारियौ सारै हिन्दू आसुराण॥

रागां सिंधू कान लागां पछ्तासी रावराजा ।
चंद्रहासां वागां याद आसी चाहुवाण ॥ ४ ॥

(१० महडू रामकरण, सरस्या, मेवाड़)

हे दूसरे शत्रुशाल ! तुम्हें अपना वचन भंग कर इस प्रकार चारों ओर फिरंगियों से घेरा दिला ऐसा विश्वासघात नहीं करना था। हे राजा ! उसे तो युद्ध के अवसर पर उपयोग में लेना था। बूंदीनाथ ! बलवन्तसिंह को तुम्हें कभी नहीं मारना चाहिये था। वह तो हिन्दू मुसलमान दोनों के लिये समर्थ शत्रुओं के विपुल समूहों के विरुद्ध लगाम उठा कर अपने घोड़े को झोंक देता। हे बलानाथ। बहादुरसिंह के पुत्र को अकारण ही मरवा न दिया होता तो वह तुम्हारे बला (गिरिप्रदेश) के लिये विकट समय में ढाल स्वरूप सिद्ध होता। वह युद्ध में अर्जुन के समान अद्भुत छटा को धारण करने वाला था। हे राव राजा ! तुम ने हानि लाभ का विचार किये बिना ही अपने सिर पर व्यर्थ ही घृणित आरोप ले लिया। उस सच्चे क्षत्रिय बलवंतसिंह को तो शत्रु समूहों में बढ़ाना था, न कि यों ही सहज में मरवा डालना। हां ! दूसरों के बहकाने में आकर तुमने गोठड़ा-पति को क्यों मरवा दिया। उसके निधन से हिन्दू मुसलमान सभी शोक सागर में डूब गये हैं। हे रावराजा ! जब कभी युद्ध निनाद के साथ सिंधु राग शुरू होगा तब तुम अपनी इस दुष्कृति पर पछताओगे और चंद्रहास चलने लगेगी तब तुम्हें वह चहुवाण याद आवेगा।

दोहा

वित पातां, डर वैरियां, पल ग्रीधां परवार ।
बलवँत हाड़ा तो विना, देसी कुण दातार ॥ १ ॥

भावार्थ:—हाड़ा बलवन्तसिंह ! तेरे बिना अब पात्रों को द्रव्य, गिद्ध परिवार को मांस और शत्रुओं को भय दूसरा कौन दानी देगा ?

हेड़ाऊ कुल हैमगां, मुँहड़ै दीसै मोल।
बलवँत हाडा बाहिरा, तुरियां घटिया तोल ॥ २ ॥

भावार्थः—बलवन्तसिंह हाडा के बिना घोड़ों के व्यापारियों के चहरों पर म्लानता छाई हुई दिखाई देती है। अब घोड़ों का मूल्य ही घट गया।

सोरठा

बिहुँवे थोक अबीह, रण मटवो नटवो रसण।
सो तो बलवँतसीह, जीयौ जितै न जाणियौ ॥ १ ॥

भावार्थः—वह दोनों बातों दान और शौर्य में सदा निडर बना रहा। जब तक जीवित रहा, दान के लिये जिव्हा से इन्कारी और शत्रुओं से युद्ध विराम तो बलवंतसिंह ने कभी जाना ही नहीं।

हट नभियौ हिंदवाण, दुरजोधन रावण जिसौ।
चावौ भड़ चहुवाण, बढियौ आज बळंतसी ॥ २ ॥

भावार्थः—हिन्दुस्थान में जिसका हठ रावण और दुर्योधन के समान निभा, वह प्रसिद्ध चहुवाण सुभट बलवन्तसिंह आज रण-मरण को प्राप्त होगया !

सीमाड़ा अर साल, खग झाड़ां ढाहण खलां।
धर बूंदी घर ढाल, बढियौ आज बळंतसी ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो सीमावर्ती शत्रुओं के लिये शल्य समान था, जो दुष्टों को असि-प्रहार से नष्ट करने वाला था और था बून्दी-धरा रूपी घर की ढाल, वह बलवंतसिंह आज युद्ध में काम आ गया।

दुसहां तोड़ण दंत, मोड़ण रण घड़ मैंगळां।
बूंदी धर बळवंत, एकरसां फिर आवजे ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे बलवन्त ! शत्रुओं के दांत तोड़ने और युद्ध में गजसेना को पीछी मोड़ने के लिये बूंदी की भूमी में एक बार तो फिर आ जाना।

पढियौ तुरकां पीर, देव कळा जिम हिन्दवां।
बळवँत जेहा बीर, हुवा न कोई होवसी॥ ५॥

भावार्थः—जिस को मुसलमानों ने पीर और हिन्दुओं ने देवता स्वरूप समझा, उस बलवंतसिंह जैसा शूर-वीर न तो कोई हुआ और न होगा !

दळ दिल्ली दिखणाद, आहुड़सी अंगरेज सूं।
उण दिन आसी याद, बिखमी बार बळंतसी॥ ६॥

भावार्थः—दिल्ली और दक्षिण की सेनायें जब अङ्गरेजों से भिड़ेंगी तब, उस विकट वेला में बलवन्तसिंह याद आवेगा।

कर कर भारत केक, वित लायौ सोइ वांटियौ।
हाडौ रहियौ हेक, वसुधा अमर बळंतसी॥ ७॥

भावार्थः—कई युद्ध कर करके जो भी सम्पदा लाया वह सभी उस ने वितरित कर दी। इस उदाराशयता के कारण वह बलवन्तसिंह हाडा वसुधा पर अमर हो गया है।

लोहां बळ हट लाग, पग पग दोयण पाड़िया।
अंगरेजां उर आग, बाळी भली बळूंतसी॥ ८॥

भावार्थः—अपने संकल्प की पूर्ति के आग्रह से शस्त्रबल द्वारा तूने पैर-पैर पर शत्रुओं को मार गिराये। बलवन्तसिंह ! अंगरेजों के हृदयों में तूने क्या ही खूब आग धधकाई !

शूरा चामल सीस, विढतां पिंड कीधा सुवप।
आखै पितर असीस, वसजे सुरग वळ तसी ॥ ६ ॥

भावार्थ:—हे शूर! चम्बल नदी पर युद्ध में अपनी पवित्र देह के रक्त से तूने जो पिण्डदान किया, उससे प्रसन्न हो पितृदेव तुझे आशीर्वाद देते हैं कि प्रिय बलवन्त! तेरा निवास स्वर्ग में हो।

दोहा

समत अठार इक्यासियै, मँड जुध कातिक मांय।
बलवँत हाडौ वीसम्यौ, पून्यूं रवि दिन पाय ॥ १ ॥

भावार्थ:—संवत् अट्ठारह सौ इक्यासी के कार्तिक मास में जो युद्ध हुवा उसमें पूर्णिमा रविवार के दिन बलवन्तसिंह हाडा ने रणभूमि में चिरविश्राम किया।

[रचयिता—चण्डीदान मिश्रण, बूंदी]

बल्लू चांपावत

गीत

वजर जेम खग झाट, चांपा कमँध वलूड़ा।
लाथड़ा जेम खल सीस लाद्या ॥
पराजय देणनूं दिली रा पती ने।
किलम्मां सेन मझ रूक काढ्या ॥ १ ॥

सदा छटतीस आवध जड़ सनाहां।
रूकड़ां रटक हूँ रह्यौ राजी ॥
दलीपत खेध कप्पाट चव देसरा।
मौड़ सिर वीर भाराथ माझी ॥ २ ॥

अमर रौ पालवा वैर गढ आगरै।
कमँध चित अजक विन कलह कीयां ॥

पटायत वज्यौ नहँ नंद गोपाल रौ।
वाजियौ बँटायत विपत वीयां॥ ३॥
सार खल श्रोण छक धकी उर साह रै।
पराक्रम सत्रुवां जंग पल्लू॥
सूर अन छत्रियां दिवालय सुरग रै।
वीर कुँभ पताका थयौ बल्लू॥ ४॥

[रचयिता–सांवलदान आशिया, कड़िया]

भावार्थः—हे चांपावत राठौड़ बल्लू! तूने वज्र के समान अपनी तलवार के प्रहार से हनुमान के समान शत्रु शिरों का उच्छेद किया। दिल्लीपति को परास्त करने के लिये तूने युद्ध में अपनी कृपाण से मुसलमानों का संहार कर डाला, कवच के साथ छत्तीसों आयुध धारण करके तलवार चलाने से ही तू सदा आनदित रहा। तू दिल्लीश्वर का विद्रोही और अपने देशका रक्षक था और था सर्वश्रेष्ट युद्धवीर। अमरसिंह का वैर लेने के लिये आगरे में युद्ध किये बिना उस राठौड़ के चित्त में चैन नहीं था। वह गोपाल का पुत्र किसी पटायत (जागीर का पट्टा लेकर आधीन हो जाने वाला) नहीं कहलाया, वह तो सदा दूसरों की विपत्ति को बँटाने वाला ही कहलाया। युद्ध में शत्रुओं को अपना पराक्रम दिखाने वाले उस वीर बल्लू की शत्रु-शोणित से तृप्त हुई कृपाण की आग बादशाह के हृदय में जा धधकी और वह वीराग्रणी अन्य शूर वीरों के स्वर्ग रूपी देवालय के कलश की ध्वजा के समान बन गया।

रावत विजयसिंह, कोठारिया (मेवाड़)

गीत

धड़हड़ियौ सोर धरा नभ धूंधल।
सूरा परन सँभारै।
ऊभां राव विजौ नहँ आवै।
दखणी नाथदुवारै॥ १॥

आडौ खड़ौ फतावत अनपी ।
मरण तणौ सिर बांधे मह़ ॥
करमर हात सलामत चाकर ।
ठाकर किम ऊथपसी ठौड़ ॥ २ ॥

कार लोप आयौ चढ़ हुलकर ।
करौ जियत मत सांसौ कोय ॥
सर कायम जतरै नहँ सरजी ।
हरजी रौं ऊथापण होय ॥ ३ ॥

स्याम आप, हूँ थारौ चाकर ।
सदा ही रहियो सूभ सहाय ॥
धड़ म्हारा बटकां पग धरसी ।
गिरधारी नीसरसी गाय ॥ ४ ॥

रज-रज हुवौ वुधाहर रुकां ।
नरवा अछर विवाणां ॥
पाड़े घणां पछै रण पड़ियौ ।
चढियौ जल चहुवाणां ॥ ५ ॥

[रचयिता—अज्ञात]

भावार्थः—युद्धक्षेत्र में बारूद भभक उठने से आकाश और पृथ्वी धूमिल होगये। शूरवीर इस युद्ध महापर्व का स्मरण करते हुए कहने लगे कि रावत बिजैसिंह के खड़े रहते दक्षिणी लोग नाथद्वारे न आ सकेंगे। मृत्यु का सेहरा शिर पर बांध कर वह अनम्र फतावत सम्मुख खड़ा है और कह रहा है कि जब तक तलवार हाथ में लिये यह सेवक जीवित है, मेरे स्वामी का स्थान परिवर्तन कैसे हो सकता है? मर्यादा भंग करके होलकर चढ़ आया है, किन्तु कोई किसी प्रकार

की आशंका नहीं करें; जब तक मेरे धड़ पर शिर है तब तक यह विधि-लेख ही नहीं कि श्रीनाथजी का यहां से उत्थापन हो जाय। हे प्रभु! आप स्वामी और मैं सेवक हूं। सदा ही आप मेरे सहायक रहे हैं। अतः आप तो क्या, आपकी गायें भी मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े होने पर ही यहां से निकल सकेंगी।

यों कहता हुवा वह बुधसिंह का पोता अनेकों शत्रुओं को युद्ध-भूमि में सुला कर विमानों में अप्सराओं को वरण करने के लिये तल-वारों से टुकड़े टुकड़े होगया। उसकी इस वीरगति से चहुवाण और अधिक गर्वीले बन गये।

कविराजा बांकीदास

सोरठा

सद विद्या बहु साज, बांकी ही बांका वसू।
कर सूधी कविराज, आज कठीगौ आसिया ॥ १ ॥

विद्या कुल विख्यात, राजकाज हर रहस री।
बांका ! तो विण बात, किण आगल मन री कहां ? ॥२॥

[रचयिता— महाराजा मानसिंह, जोधपुर]

भावार्थः—हे बांकीदास ! तेरी सद्विद्या के विपुल वैभव से मेरी यह वसुधा बड़ी बांकी (गौरव शालिनी) बनी हुई थी। उसे अब नितान्त सरल (सामान्य सी) बना कर, हे आशिया ! हे कविराजा ! आज तूं कहाँ चला गया? और विख्यात राज कार्य, कुलों की ऐतिहासिक चर्चा एवं आध्यात्मिक रहस्य सम्बन्धी मन की बातें हे वांकीदास ! तेरे बिना अब किसके सामने करें।

